आन्द्रे जीद (नोबल प्राइज विजेता)

संकरा द्वार

'संकरे द्वार से प्रवेश करने का प्रयत्न करो'

(बाइबल, सेण्ट ल्यूक, १३।२४)

सुशीलादेवी शास्त्रिणी

द्वारा मूल फ्रेंच पुस्तक **La Porte Etroite** से अनूदित

प्रकाशक

सरस्वती-सदन, मसूरी

नवम्बर, १९५२

प्रथम संस्करण) (मूल्य २॥)

प्रकाशक
श्री विश्वरंजन, सरस्वती-सदन, मसूरी

आन्द्र जाद की फ्रेञ्च पुस्तक
'ला पॉर्त एत्रोआत्' का हिन्दी अनुवाद

मुद्रक
श्यामसुन्दर श्रीवास्तव
नेशनल हेराल्ड प्रेस,
लखनऊ

प्रकाशक का निवेदन

जब से हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लिया गया है, हिन्दी के लेखकों और प्रकाशकों पर एक विशेष उत्तरदायित्व आ गया है। अब यह आवश्यक हो गया है, कि सब प्रकार का उच्च से उच्च ज्ञान हिन्दी में उपलब्ध हो। इसके लिये जहां यह जरूरी है, कि हिन्दी में सब विषयों पर उच्च कोटि की मौलिक पुस्तकें प्रकाशित हों, वहां यह भी उपयोगी है, कि संसार के सर्वोत्कृष्ट साहित्य का हिन्दी में अनुवाद किया जाय। अंग्रेजी, फ्रेञ्च, रूसी आदि भाषाओं की यही विशेषता है, कि उनमें सब विषयों की सब प्रकार की पुस्तकें उपलब्ध हैं। संसार की किसी भी भाषा में कोई भी उच्च कोटि की पुस्तक प्रकाशित हो, अंग्रेजी, फ्रेञ्च आदि में तुरन्त उसका अनुवाद हो जाता है, और यही कारण है, कि इन भाषाओं को जाननेवाले लोग विश्व की विचारधाराओं व ज्ञान से परिचय पाने का अवसर प्राप्त कर लेते हैं। अब हिन्दी एक ऐसे विशाल देश की राष्ट्रभाषा है, जिसके निवासियों की संख्या पैंतीस करोड़ के लगभग है। अब वह समय आ गया है, जब साहित्यिक दृष्टि से हिन्दी की भी वही स्थिति होनी चाहिए, जो कि अंग्रेजी, फ्रेञ्च, जर्मन आदि उन्नत भाषाओं की है।

इसी बात को दृष्टि में रखकर हमने यह निश्चय किया है, कि जहां हम आधुनिक विषयों पर उच्च कोटि की मौलिक पुस्तकें प्रकाशित करें, वहां साथ ही विश्व-साहित्य के सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने पर भी ध्यान दें। आन्द्रे जीद की प्रसिद्ध पुस्तक 'ला पॉर्त एत्रोआत्' का यह अनुवाद इस दिशा में हमारा पहला कदम है। आन्द्रे जीद की गणना आधुनिक युग के सर्वोत्कृष्ट साहित्यिकों में की जाती है। वे फ्रांस के निवासी

थे, पर उनकी फ्रेञ्च पुस्तकों का अनुवाद संसार की अनेक उन्नत भाषाओं में हो चुका है। उनकी पुस्तकें सर्वत्र बड़े उत्साह के साथ पढ़ी जाती हैं। अभी तक उनकी किसी पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित नहीं हुआ, यद्यपि १९४७ का साहित्य-सम्बन्धी नोबल पुरस्कार प्राप्त करने के कारण उनका नाम हिन्दी के पाठकों से अपरिचित नहीं रहा है। हमें विश्वास है, कि हिन्दी के वे पाठक, जो सस्ती और हलकी पुस्तकों की अपेक्षा गम्भीर व कलापूर्ण साहित्य को पढ़ने की रुचि रखते हैं, आन्द्रें जीद के 'संकरा द्वार' को पढ़कर आनन्द और सन्तोष अनुभव करेंगे।

आन्द्रें जीद की फ्रेञ्च पुस्तक 'ला पॉर्तं एत्रोआत्' का यह हिन्दी अनुवाद श्रीमती सुशीला देवी ने किया है। हिन्दी-संसार उनसे अभी तक परिचित नहीं है। संस्कृत की वे प्रकाण्ड पण्डिता हैं, अंग्रेजी पर उनका प्रचुर अधिकार है, और फ्रेञ्च का उन्हें अच्छा ज्ञान है। दो वर्ष के लगभग पेरिस में रहने के कारण उन्हें फ्रेञ्च भाषा, फ्रेञ्च संस्कृति आदि से अच्छा परिचय है। उन्होंने यह अनुवाद मूल फ्रेञ्च पुस्तक को सामने रखकर किया है, और यही कारण है, कि अनुवाद की शैली मूल फ्रेञ्च पुस्तक की शैली से दूर हटने नहीं पाई है।

हमें आशा है, कि हिन्दी-संसार हमारे इस प्रकाशन का उत्साहपूर्वक स्वागत करेगा, और हमें इस बात का अवसर देगा, कि हम फ्रेञ्च, जर्मन, अंग्रेजी आदि भाषाओं की अन्य उत्कृष्ट पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित कर सकें।

सरस्वती-सदन,
मसूरी

प्रस्तावना

आधुनिक युग के साहित्यिकों में आन्द्रे जीद का स्थान बहुत ऊंचा है। उनकी गणना संसार के सर्वश्रेष्ठ लेखकों और विचारकों में की जाती है। १९४७ में नोबल प्राइज प्रदान कर विश्व के साहित्यकारों ने अपनी श्रद्धांजलि उनके प्रति अर्पित की थी।

आन्द्रे जीद की रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है, कि उनमें किसी एक विचारधारा का अनुसरण नहीं किया गया है। वे न किसी मत के अनुयायी थे, और न किसी परम्परा के दास। उन्हें जब जो सूझा, उसे ही उन्होंने लिखा। उन्होंने इस बात की भी परवाह नहीं की, कि उनकी विविध पुस्तकों में विचारों का कितना भेद है। उन्होंने जहां ऐसे विचार प्रगट किये, जो धर्मवादी लोगों को पसन्द नहीं थे, वहां साथ ही ऐसी बातें भी लिखीं, जिनके कारण साम्यवाद जैसे नवीन मत के लोग उनसे नाराज हो गये। वस्तुतः, उनके लिये किसी एक परम्परा का अनुसरण करना या किसी निश्चित अनुशासन में रह सकना सम्भव ही नहीं था। उन्होंने जनता के बहुमूल्य संस्कारों और विश्वासों के प्रति संशय की भावना उत्पन्न की; और इसी का यह परिणाम हुआ, कि रोमन कैथोलिक चर्च के आचार्य रोम के पोप ने उनकी पुस्तकों का पठन-पाठन सद्धर्म के अनुयायी कैथोलिक लोगों के लिये निषिद्ध कर दिया। उनके स्याद्वाद या संशयात्मक विचारसरणी के कारण ही फ्रांस के साम्यवादी (कम्युनिस्ट) लोग उनके

विरोधी हो गये। आन्द्रें जीद कोई ऐसा विचार अपने पाठकों के सम्मुख नहीं रख सके, जिसे लोग उनका सन्देश समझकर अपना लेते। इसी कारण वे कोई नई विचारधारा शुरू करने में असमर्थ रहे। पर फिर भी आन्द्रें जीद का संसार के साहित्यिकों और विचारकों में बहुत ऊंचा स्थान है। उनकी रचनाओं को पढ़ते हुए कोई भी व्यक्ति उनके विचारों से वशीभूत हुए बिना नहीं रह सकता। उनकी लेखनी में अद्भुत शक्ति है, उनकी भाषा में अनुपम सौन्दर्य है, और अपनी बात को कहने का उनका ढंग एकदम निराला है। उनकी रचनाओं को पढ़कर पाठकों के हृदय में अपने सब मन्तव्यों, विश्वासों और परम्पराओं के विषय में एक संशय का सा भाव उत्पन्न होने लगता है। पुराने जमाने के विश्वासों और मर्यादाओं के प्रति संशय व विद्रोह की भावना को तो आधुनिक युग के प्रायः सभी लेखक उत्पन्न करते हैं। पर वर्तमान समय में जिन विचारों को प्रगतिशील समझा जाता है, उनके सम्मुख भी प्रश्नात्मक चिन्ह लगा देना आन्द्रें जीद का ही कार्य था।

आन्द्रें जीद की रचनाओं में 'पृथिवी के अन्न' (Les Nourritures Terrestres) बहुत प्रसिद्ध हुई। इसमें उन्होंने यह विचार प्रतिपादित किया, कि पुराने जमाने के धार्मिक विश्वासों और मत-सम्प्रदायों ने नैतिकता के नाम पर मनुष्य को निरर्थक शृंखलाओं में जकड़ रखा है। इन शृंखलाओं को तोड़कर ही मनुष्य सच्चे सुख, आनन्द, स्वातन्त्र्य, साहस और पुण्य को प्राप्त कर सकता है। बहुत से लोगों ने समझा, कि आन्द्रें जीद के ये विचार मनुष्य को उच्छृंखलता की ओर ले जानेवाले हैं, और इनके कारण नवयुवकों में इन्द्रिय-सुख की प्रवृत्ति बढ़ती है। आन्द्रें जीद की

यह पुस्तक शुरू में जनता ने जरा भी पसन्द नहीं की। वीस साल के लम्बे अरसे में इसका प्रथम संस्करण भी पूर्णतया नहीं बिक सका। फिर १९२० के बाद इस पुस्तक का इतना अधिक प्रचार हुआ, कि इसके बीसों संस्करण प्रकाशित हो गये और संसार की प्रायः सभी उन्नत भाषाओं में इसका अनुवाद हो गया। बीसवीं सदी के दो महायुद्धों ने संसार के नवयुवकों के विचारों में इतना अधिक परिवर्तन कर दिया, कि आन्द्रे जीद की विचार-सरणी उन्हें बहुत ग्राह्य प्रतीत होने लगी।

आद्रें जीद ने अनेक ऐसी पुस्तकें लिखी, जिनमें 'पृथिवी के अन्न' की विचारधारा का ही अनुसरण किया गया था। पर उनके लिये किसी एक विचार पर दृढ़ रह सकना सम्भव नहीं था। वे मानव-समाज के प्रत्येक मत, विचार, विश्वास व परम्परा को एक आलोचक के रूप में देखते थे। यही कारण है, कि बाद में उन्होंने अनेक ऐसी पुस्तकें भी लिखीं, जिनमें वे एक धार्मिक व्यक्ति के रूप में प्रगट हुए और धार्मिकता व परमार्थ के इतने ऊंचे स्तर पर पहुंच गये, कि आधुनिक युग का शायद कोई अन्य साहित्यिक उस स्तर पर नहीं पहुंच सका। हमने आन्द्रे जीद की जिस पुस्तक को अनुवाद के लिये चुना है, वह इसी ढंग की है। उसमें एक ऐसी युवती की कल्पना प्रस्तुत की गई है, जो पार्थिव व शारीरिक प्रेम की उपेक्षा कर भगवान् के प्रेम में ही अपने जीवन को अर्पण कर देने का संकल्प करती है। वह अपने को ईश्वर में विलीन कर अपने जीवन के फल को प्राप्त करने का प्रयत्न करती है।

उपनिषद् की एक कथा के अनुसार प्रत्येक मनुष्य के सम्मुख दो मार्ग होते हैं, श्रेय-मार्ग और प्रेय-मार्ग। बहुसंख्यक मनुष्य तो प्रेय-मार्ग का ही

अनुसरण करते हैं। पर कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो प्रेय-मार्ग के प्रलोभनों का त्याग कर श्रेय-मार्ग को अपनाते हैं। बाइबल में भी इसी विचार को बड़े सुन्दर रूप में प्रगट किया गया है। वहां लिखा है—

"तुम संकरे द्वार से प्रवेश करने का प्रयत्न करो। जो द्वार विशाल है, और जो पथ चौड़ा है, वह विनाश की ओर ले जाता है। बहुत से ऐसे हैं, जो उसका अवलम्बन करते हैं। वह दरवाजा संकरा है, और वह रास्ता तंग है, जो जीवन की ओर ले जाता है। ऐसे विरले हैं, जो उसे ढूंढ़ निकालते हैं।"

उपनिषद् और बाइबल के इसी विचार को सम्मुख रखकर आन्द्रे जीद ने अपना यह उपन्यास लिखा है। इसीलिये इसका नाम 'संकरा द्वार' (La Porte Etroite) रखा गया है। अनेक आलोचकों की दृष्टि में यह आन्द्रे जीद की सर्वश्रेष्ठ रचना है। विषय, भाषा, प्रतिपादन-शैली और कला—सभी दृष्टियों से यह पुस्तक अनुपम है। इसे पढ़ते हुए विचार-शील पाठक ऐसा अनुभव करता है, मानो वह किसी दूसरे भावनामय लोक में जा पहुंचा हो। श्रेय-मार्ग या संकरे द्वार को अपनानेवाली कुमारी अलीसा जब यह अनुभव करती है, कि अपने प्रेमी के प्रति उसका प्रेम उस (प्रेमी) के पुण्य, कल्याण और परमार्थ में बाधक है, तो भारतीय पाठक के सम्मुख सन्त कबीर के ये शब्द घूमने लगते हैं—"प्रेम-गली अति सांकरी, तामें दो न समायं।"

'संकरा द्वार' दो ऐसे युवक और युवती की प्रेम-कहानी है, जो एक दूसरे को असीम प्रेम करते थे, पर जो परिस्थितियों से विवश होकर इस

संसार से विमुख हो गये, और जिन्होंने परमार्थ की प्राप्ति और श्रेय-मार्ग के अनुसरण में अपना जीवन अर्पण कर दिया।

अलीसा और जरोम बचपन से साथ रहे, वे एक साथ खेले और एक साथ पढ़े। अलीसा जरोम की ममेरी बहन थी। जैसे-जैसे वे बड़े होते गये, बचपन का उनका सख्यभाव भी प्रेम में परिणत होता गया। किशोरावस्था में ही यह प्रेम चरम सीमा तक पहुंच गया। पाश्चात्य संसार में ममेरे भाई-बहनों का विवाह अनुचित नहीं समझा जाता। दक्षिणी भारत में भी इस ढंग के विवाह प्रचलित हैं। अलीसा और जरोम के जीवन एक दूसरे को अविकल भाव से अर्पित थे। विद्यार्थी-अवस्था में जरोम इस प्रयोजन से अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ता था, ताकि वह अलीसा को उन्हें पढ़ने के लिये प्रेरित कर सके। अलीसा उन पुस्तकों को इसलिये पढ़ती थी, ताकि वह ज्ञान में जरोम से पीछे न रह जाय। जब जरोम ने लैटिन पढ़ना शुरू किया, तो अलीसा ने भी उसका अनुसरण किया। एक दूसरे के बिना उन दोनों को अपना जीवन अपूर्ण प्रतीत होता था। वे एक दूसरे के लिये जीते थे। अलीसा को प्रतीत होता था, कि जरोम के बिना वह 'वह' नहीं है; और जरोम के लिये अलीसा के अतिरिक्त इस जीवन में अन्य कोई आकर्षण नहीं था।

जरोम के पिता की असामयिक मृत्यु ने उसके भावुक हृदय पर कुछ ऐसा प्रभाव डाला, कि वह समय से पहले ही पक गया। उधर अलीसा की मां ल्युसिल बचपन से ऐसे वातावरण में पली थी, कि उसे सद्गृहस्थों की मर्यादा का ज्ञान नहीं था। अलीसा का हृदय अत्यन्त कोमल और भावुक था। वह अपने पिता को बहुत प्यार करती थी। मां की उच्छृंखलता

से पिता के हृदय को चोट पहुंचेगी, इस कल्पना से ही उसका हृदय फटा जाता था। बचपन में ही जीवन के इस थपेड़े ने अलीसा को भी समय से पहले ही पका दिया था। जब ल्युसिल घर छोड़कर भाग गई, तब इस घटना ने अलीसा के कोमल हृदय पर यह प्रभाव डाला, कि यह संसार और इसके सुख-दुःख अवास्तविक हैं। मनुष्य को उस मार्ग से चलना चाहिये, जो तंग है, जो श्रेय की ओर ले जाता है; और उस द्वार से प्रवेश करना चाहिये, जो संकरा है, जो वास्तविक जीवन की ओर ले जाता है। यद्यपि अलीसा के हृदय में जरोम के लिए प्रगाढ़ स्नेह था, पर वह सांसारिक अर्थों में उसे प्रेम करते हुये कुछ भय का सा अनुभव करने लगी थी।

जरोम भी अलीसा को हृदय से प्यार करता था। पर उसके प्रति प्रेम को प्रगट करते हुए वह संकोच अनुभव करता था। अलीसा की एक छोटी बहन थी, जिसका नाम ज्यूलिएत् था। अलीसा के प्रति उठती हुई प्रेम-भावनाओं को जरोम ज्यूलिएत् से कह देता था, इस आशा से कि उस द्वारा वे अलीसा तक पहुंच जायंगी। पर इसका परिणाम बहुत बुरा हुआ। ज्यूलिएत् जरोम के प्रेमावेश को देखकर स्वयं उसे प्रेम करने लग गई। जब अलीसा को यह बात ज्ञात हुई, तो वह अपनी छोटी बहन के सुख के लिये अपने प्रेम को बलि देने के लिये उद्यत हो गई। पर जरोम के लिये तो यह संसार अलीसामय था। वह यह कल्पना भी नहीं कर सकता था, कि अलीसा के अतिरिक्त भी वह किसी को प्यार कर सकता है।

अलीसा के हृदय में 'संकरे द्वार' को अपनाने की अभिलाषा तो उसी समय उत्पन्न हो गई थी, जब उसे अपनी मां ल्युसिल के उच्छृंखल जीवन का आभास मिला था। अपने पिता के दुःखी जीवन को देखकर उसे संसार

और उसके क्षणभंगुर सुखों से वैराग्य-सा हो गया था। अब अपनी छोटी बहन ज्यूलिएत् को जरोम के प्रेम में फंसी देखकर श्रेय-मार्ग का अनुसरण करने की उसकी इच्छा और भी अधिक प्रबल हो गई। अब वह धर्म-ग्रन्थों का तन्मयता-पूर्वक स्वाध्याय करने लगी। उसने निश्चय कर लिया, कि मैं उस संकरे द्वार और तंग रास्ते का अनुसरण करूंगी, जो सच्चे जीवन की ओर ले जाते हैं।

पर अलीसा की इस साधना में जरोम का प्रेम सबसे बड़ी बाधा थी। उसे अपनी पुस्तकों में, अपने कमरे में, समुद्र के तट पर, उद्यान में——सब जगह जरोम की प्रतिमा प्रतिबिम्बित होती हुई प्रतीत होने लगी। वह अनुभव करने लगी, कि परमार्थ की प्राप्ति के लिये, भगवान् में अपने को विलीन करने के लिये भी तो उसे जरोम की आवश्यकता थी। यदि उसे यह विश्वास न होता, कि मृत्यु के पश्चात् भगवान् के यहां वह और जरोम फिर एक साथ हो जायंगे——दोनों भगवान् में एक साथ विलीन होकर एक हो जायंगे; वहां मानव-शरीरों की भिन्नता, उनके क्लेश, आधिव्याधि आदि उनके प्रेम में, उनकी एकात्मकता में कोई बाधा न डाल सकेंगे, तो शायद अलीसा इस प्रकार परमार्थ की ओर प्रवृत्त न हो सकती। अलीसा सोचती थी, कि क्या ही अच्छा होता, जो वह और जरोम, दोनों भगवान् की ओर ले जानेवाले इस मार्ग पर साथ-साथ चल सकते; पर यह रास्ता इतना संकरा है, कि इस पर दो प्राणी साथ-साथ नहीं चल पाते। अलीसा के हृदय में जरोम के लिये अनन्त प्रेम था, वह उसके अभाव में अपने जीवन की सत्ता की ही कल्पना नहीं कर सकती थी। पर परिस्थितियों ने उसके हृदय में एक आशंका, एक भय का संचार कर दिया था। वह जरोम को

चाहती हुई भी, उसके प्रेम में पागल बनी हुई भी उसको इस जीवन में अपना सकने में असमर्थ थी। प्रेम का जो उच्च आदर्श उसके सम्मुख था, उसके कारण उसे शारीरिक सम्बन्ध बहुत हेय प्रतीत होता था। वह अनुभव करती थी, कि सगाई, विवाह आदि प्रेम के बन्धन के जो बाह्य रूप हैं, वे मनुष्य को सर्वोत्कृष्ट प्रेम के आदर्श से नीचा गिरा देनेवाले हैं। इसीलिये उसने जरोम को सर्वतोभाव से प्रेम करते हुए भी एक ऐसे मार्ग को अपनाया, जिसे हमारे शास्त्रों में 'श्रेय-मार्ग' और बाइबल में 'संकरा द्वार' नाम से कहा गया है। अलीसा ने प्रेम-समाधि द्वारा अपने प्राणों को त्याग दिया, और मृत्यु से पहले ही उस अनिर्वचनीय आनन्द का आस्वाद कर लिया, जिसे हमारे शास्त्रों में 'ब्रह्मानन्द' कहा गया है। वह संसार के विविध तापों से ऊपर उठ गई, और अपने चारों ओर उस ज्योतिर्मय आनन्द का अनुभव करने लगी, जिसे इस संसार में प्राप्त कर सकना प्रायः असम्भव है। वह यह कामना लेकर इस संसार से विदा हुई, कि जरोम भी उस अनुपम व अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति में समर्थ हो सके।

आन्द्रे जीद ने अलीसा की इस अनुभूति को कितने सुन्दर शब्दों में उसकी डायरी में अंकित कराया है—"आनन्द, आनन्द, आनन्द, आनन्द के आंसू ......मानुषिक आनन्द के ऊपर और सब कष्टों से विरहित, जी हां, मैं उस ज्योतिर्मय आनन्द को देख रही हूं।......जरोम, मैं चाहती हूँ, कि मैं तुम्हें भी पूर्ण आनन्द की शिक्षा दे सकती।"

वह अलीसा का प्रेम ही था, जिसने जरोम को इस बात के लिये प्रेरित किया, कि वह सांसारिक सुखों को त्याग कर परमार्थ और भगवत्-प्रेम के कष्टप्रद और संकरे मार्ग पर चलने के लिये उद्यत हो। अलीसा

के अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री के प्रेम का ध्यान कर सकना तो जरोम की सामर्थ्य में था ही नहीं। अलीसा को न पाकर जरोम भी प्रेम के उस उच्च आदर्श तक पहुंचने में तत्पर हुआ, जिसे अलीसा ने उसके सम्मुख रखा था।

जरोम और अलीसा की इस कथा को पढ़कर हमारा ध्यान सन्त तुलसीदास की ओर खिंचे बिना नहीं रहता, जो शुरू में अपनी पत्नी के मानुषी प्रेम में पागल था। स्त्री के प्रेम में वह इतना लीन था, कि उसे किसी अन्य बात का ध्यान ही नहीं रह गया था। पर अपनी पत्नी की एक झाड़ खाकर वह प्रेम के उच्च आदर्श की ओर प्रेरित हुआ, और अन्त में राम के प्रेम का वह ज्योतिर्मय रूप उसने प्राप्त किया, जो बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों के लिये भी दुर्लभ है। सन्त तुलसीदास अमर हो गये, क्योंकि उन्होंने अपनी प्रेयसी से प्रेरणा पाकर पार्थिव प्रेम की अपेक्षा राम व भगवान् के प्रेम को प्राप्त करने, उसमें अपने को लीन कर देने के आदर्श को अपनाया था। आन्द्रे जीद की यह अनुपम रचना हमें उसी ज्योतिर्मय आनन्द की ओर ले जाती है, जिसकी प्राप्ति के लिये तुलसीदास ने प्रयत्न किया था।

पर यह अनुपम पुस्तक उस युग में लिखी गई है, जिसका आदर्श भौतिकवाद है। इसके लेखक उस देश के निवासी थे, जो भौतिक सभ्यता और विलासमयी संस्कृति का प्रतिनिधि माना जाता है। आन्द्रे जीद को आलोचक लोग ऐसा विचारक समझते हैं, जिसने नैतिकता की परम्परागत मर्यादाओं के प्रति संशय की भावना उत्पन्न की। इसमें सन्देह नहीं, कि आन्द्रे जीद उन सब शृंखलाओं का विरोधी था, जिनमें कि मानव-समाज

को जकड़ रखा है। वह स्वतन्त्रता का पक्षपाती था, विचारों की स्वतन्त्रता का, आचरण की स्वतन्त्रता का और साथ ही नैतिक आदर्शों की स्वतन्त्रता का। पर स्वतन्त्रता की उत्कट अभिलाषा ही उसे 'संकरा द्वार' जैसी पुस्तक को लिख सकने में समर्थ बना सकी। प्रेम का यह कैसा 'स्वतन्त्र' व उच्च आदर्श है, जिसे आन्द्रे जीद ने इस पुस्तक द्वारा संसार के सम्मुख उपस्थित किया है। 'संकरा द्वार' में प्रेम का जो रूप उपस्थित किया गया है, वह किसी बाह्य बन्धन की अपेक्षा नहीं करता, शारीरिक सम्बन्ध उसे नीचा गिरा देता है, सामाजिक मर्यादाएं उसे हीन बना देती हैं। पर वह प्रेम उच्छृंखलता नहीं है, उसका प्रयोजन उस ज्योतिर्मय आनन्द की अनुभूति है, जो ऐहलौकिक वासना से एकदम पृथक् है। अलीसा अपने सुख का इसलिये बलिदान करती है, कि उसका प्रेमी 'संकरे द्वार' में प्रवेश कर सके। कैसी अद्भुत कल्पना है, कैसा उच्च आदर्श है!

आइये, पाठक, आन्द्रे जीद की इस अनुपम रचना का रसास्वादन कीजिये। कुछ क्षण के लिये आप भी उस ज्योतिर्मय आनन्द में विभोर हो जाइये, जिसे अलीसा ने अपने इस पार्थिव शरीर में ही, इस सांसारिक जीवन में ही प्राप्त कर लिया था। अलीसा और जरोम की यह कथा अद्भुत है, अनुपम है। आन्द्रे जीद ने इसे जिस ढंग से उपस्थित किया है, वह भी इस फ्रेन्च साहित्यकार की कला का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

सुशीला

संकरा द्वार

संकरा द्वार

पहला अध्याय

कुछ लोग तो शायद इस पर एक पुस्तक ही लिख डालते, पर अपने जीवन की जो कथा मैं आपको सुनाने लगा हूँ, उसके लिए मुझे अपनी सभी शक्ति खर्च करनी पड़ी है, मुझमें जो कुछ भी विशेषताएं और गुण हैं, उन सबका मुझे प्रयोग करना पड़ा है। इसीलिए मेरे संस्मरण जैसे-जैसे स्मृति-पथ पर आते जायेंगे, वैसे-वैसे मैं उन्हें लिखता जाऊंगा। कहीं-कहीं मेरा स्मृति-सूत्र विच्छृंखल और अस्त-व्यस्त हो गया है। मैं यह प्रयत्न नहीं करूंगा, कि कल्पना द्वारा उसे जोड़ूं या उसकी कमियों को पूरा करूं। अपने संस्मरणों को किसी भी प्रकार परिष्कृत करने के प्रयत्न का यही परिणाम होगा, कि इन्हें सुनाने से जिस सुख व सन्तोष की मैं आशा करता हूँ, वही नष्ट हो जायगा।

मैं अभी बारह वर्ष का भी नहीं हुआ था, कि मेरे पिता की मृत्यु हो गई। मेरे पिता लहाव्र में डाक्टर थे। उनके मरने के बाद मेरी मां को लहाव्र में कोई सहारा नहीं रहा। उसने पेरिस जाकर बसने का निश्चय किया। उसका विचार था, कि वहां मेरी शिक्षा ज्यादा सुभीते से हो सकेगी। उसने लुक्समबूर के पास एक छोटा-सा फ्लैट किराए पर ले लिया और कुमारी ऐशबर्टन भी हमारे परिवार के साथ रहने के लिए आ गई। कुमारी फ्लोरा ऐशबर्टन का अपना कोई परिवार नहीं था। मेरी मां के बचपन में वह उनकी अध्यापिका थीं, बाद में वह उनकी साथिन बनीं और अब उनकी सहेली हो गई थीं। मैंने अपना बचपन इन दो महिलाओं की

संगति में व्यतीत किया। मुझे स्मरण है, कि ये महिलायें अपने व्यवहार में सदा मृदु और उदास रहती थीं। वे कपड़े भी हमेशा काले पहनती थीं। एक दिन, मेरा ख्याल है, मेरे पिता की मृत्यु के बहुत दिनों बाद—मेरी मां ने सुबह पहनने की टोपी में काले फीते की जगह पर जामुनी रंग के फीते को लगा दिया। मैंने चिल्लाकर कहा—"मां, यह क्या रंग है? यह तुम पर जरा भी नहीं सजता।" अगले दिन सुबह काला फीता फिर अपने स्थान पर आ गया।

मेरा स्वास्थ्य बहुत नाजुक था। मेरी मां और कुमारी ऐशबर्टन को सिर्फ एक ही चिन्ता रहती थी—मुझे बीमार पड़ने से कैसे बचाएं। यदि किसी बच्चे को हर समय पान-फूल की तरह फेरा जायगा, तो स्वाभाविक है, कि वह सुस्त और निकम्मा हो जाय। पर मैं इस दुष्परिणाम से बचा रहा। इसका कारण शायद यही है, कि मेरा कर्मण्यता का संस्कार बहुत गहरा था। गर्मियां शुरू होते ही वे सोचने लगती थीं, मेरा रंग सफेद पड़ता जा रहा है, हमें अब शहर छोड़कर चले जाना चाहिए। जून के मध्य तक हम ल्हाव्र में अवस्थित फांग्युस्मार के लिए चल पड़ते। यहां हम हर साल अपने मामा बुकोलां के घर पर गर्मियां व्यतीत करते थे।

मामा बुकोलां का मकान दोमंजिला और सफेद रंग का था। वह एक बगीची में स्थित था, जो न बहुत बड़ी थी और न विशेष सुन्दर। नार्मान्दी प्रदेश की अन्य बगीचियों से उसमें कोई भी विशेषता नहीं थी। अठारहवीं सदी में नार्मान्दी के देहात में जिस ढंग के मकान होते थे, बुकोलां का मकान भी वैसा ही था। उसमें भी कोई विशेषता नहीं थी। इस मकान में कोई बीसेक खिड़कियां बगीचे के सामने की ओर पूरब सामने थीं और इतनी ही पिछवाड़े की तरफ। पर बगलों में कोई खिड़की नही थी। खिड़कियों में छोटे-छोटे शीशे लगे हुए थे। कुछ पुराने शीशे टूट जाने से उनके स्थान पर नये शीशे लगाए गए थे। ये नए शीशे हरे रंग के पुराने और घिसे हुए शीशों के मुकाबले में बहुत उजले प्रतीत होते थे। कुछ शीशों में ऐसा दोष

आ गया था, जिसे हमारे बड़े 'बुलबुला' कहकर पुकारते थे। उनके बीच में झांकने पर पेड़ों की अजीब शक्ल बन जाती थी और जब डाकिया उधर से गुजरता, तो उसकी पीठ पर कूबड़-सा नजर आने लगता था।

बगीचा चौकोर और दीवारों से घिरा है। घर के सामने कंक्रीट के फुटपाथ से घिरा हुआ एक बहुत बड़ा छायादार लान है। बगीचे के इस ओर की चारदीवारी कुछ नीची है, और वहां से बगीचे के बाहर के मकान और खेत खूब दिखाई देते हैं। खेत देहात के रिवाज के अनुसार 'बीच' के वृक्षों की एक पंक्ति से घिरे हैं।

मकान के पीछे पछांह की ओर बगीचा अधिक दूर तक फैला हुआ है। दक्षिण की तरफ वृक्षों व लताओं की जाली से जो दीवार-सी बन गई है, उसके साथ-साथ एक पगडंडी है, जिसके दोनों ओर मुस्कराते हुए फूलों की क्यारियां हैं। इसके साथ ही कुछ झाड़ियां और वृक्ष लगे हैं, जिनके घने परदे के कारण सामुद्रिक हवा से बचाव हो जाता है। उत्तर की ओर एक अन्य पगडंडी है, जो वृक्षों की सघन शाखाओं में छिप गई है। मेरे ममेरे भाई-बहन इसे अंधेरी पगडंडी कहकर पुकारते हैं, और शाम के झुटपुटे के बाद उधर जाने की हिम्मत नहीं करते। ये दोनों पगडंडियां रसोईघर के साथ के सब्जी के खेत में जा निकलती हैं, जिससे लगा हुआ एक पुष्पोद्यान भी है और वहां तक पहुँचने के लिए कुछ सीढ़ियां भी उतरनी पड़ती हैं। सब्ज़ियों के खेत के बाद जो दीवार है, उसमें एक छोटा-सा गुप्तद्वार है। इस द्वार से बाहर जाकर दीवार के दूसरी ओर झाड़ियों की एक रविश है, जहां पहुँचकर दक्षिण और वाम—दोनों ओर से आनेवाली वृक्षों की पंक्तियां समाप्त हो जाती हैं। मकान के पिछवाड़े की सीढ़ियों पर खड़े होने पर इन वृक्ष-पंक्तियों के शिखर के ऊपर से परली ओर का पथार नजर आता है, जो सुहावनी फसलों से ढंका हुआ है। वहां से क्षितिज पर समीप के छोटे-से गांव का गिरजा भी दिखाई देता है। सांझ के समय जब वायुमण्डल शान्त होता है, तो कुछ मकानों की चिमनियां भी दीख पड़ती हैं।

गर्मियों की शाम को जब बादल और तेज हवा का नामोनिशान भी नहीं होता था, खाना खाने के बाद हम नीचे के बगीचे में चले जाते थे। वहां गुप्तद्वार से होकर हम बाहर निकल जाते और 'बीच' वृक्षों की पंक्तियों के नीचे पड़ी हुई एक बेन्च तक टहलते हुए पहुँच जाते । वहां से देहात का दृश्य बहुत सुन्दर दिखाई देता था। उस जगह पर बरफ जमा रखने का एक तहखाना था, जिसकी छत छप्पर की थी। यह अब उजाड़ हो गया था और मेरे मामा, मां और कुमारी ऐंशबर्टन इसके समीप बैठ जाया करते थे। हमारे सामने की वह छोटी-सी घाटी धुंधले कोहरे से भरती जाती थी और दूरवर्ती जंगल के ऊपर आसमान सुनहरा होता जाता था । लौटते हुए हम थोड़ी देर उद्यान में रुकते थे, वहां तब तक काफी अंधेरा हो चुका होता था। जब हम लौटते, तो मामी हमें बैठक में बैठी मिलतीं, वह हमारे साथ कभी भी नहीं जाती थीं। हम बच्चों के लिए दिन अब खतम हो जाता था। पर बहुधा हम अपने कमरे नें बिस्तरों पर पड़े हुए देर तक पढ़ते रहते थे, इतनी देर तक कि हमें अपने बड़ों के उपरली मंजिल पर सोने के लिए जाने की आवाज भी सुनाई दिया करती थी ।

दिन का सब समय या तो हम बगीचे में बिताते थे, या फिर अपने पढ़ने के कमरे में। मेरे मामा के दफ्तर में कुछ डेस्कें रख दी गई थीं, वही हमारी पाठशाला थी । मेरा ममेरा भाई राबेअर और मैं साथ-साथ काम करते थे, ज्यूलिएत् और अलीसा हमसे पीछे बैठती थीं। अलीसा मुझसे दो वर्ष बड़ी थी, और ज्यूलियेत् एक साल छोटी। राबेअर हम चारों में सबसे छोटा था ।

मैं यहां अपने बचपन के सारे संस्मरण नहीं लिख रहा हूँ। मैं सिर्फ वही बातें कहूंगा, जिनका इस कहानी से सम्बन्ध है। वस्तुतः मेरी कहानी का प्रारम्भ मेरे पिता की मृत्यु के साल से होता है। इस दुःखद घटना के कारण सम्भवतः मेरी भावुकता बहुत अधिक बढ़ गई थी। शायद मुझे स्वयं तो इतना अधिक शोक नहीं हुआ था, पर अपनी मां को शोक-संतप्त दशा में देखकर

इस समय मेरे हृदय में नये-नये भाव उत्पन्न होने लगे थे। मैं समय आने के पहले ही परिपक्व होने लगा था, और यही कारण है, कि जब हम उस साल फांग्युस्मार गये, तो ज्यूलियेत् और राबेअर मुझे अपने से बहुत छोटे मालूम पड़े । जब मैंने अलीसा को देखा, तो अकस्मात् मुझे महसूस हुआ, कि अब हम दोनों बच्चे नहीं रह गये ।

जी हां, वह मेरे पिता की मृत्युवाला साल ही था । मेरी इस बात की पुष्टि उस बातचीत से भी होती है, जो कि मुझे याद आती है, उस साल हमारे फांग्युस्मार पहुंचने के ठीक बाद मां और कुमारी ऐशबर्टन में हुई थी। मैं एकाएक उस कमरे में पहुंच गया, जहां मां अपनी सहेली से बातचीत कर रही थी । उनकी बातचीत का विषय मेरी मामी थीं। मेरी मां मामी से इसलिए नाराज थी, कि उसने मेरे पिता की मृत्यु पर कोई शोक नहीं मनाया। यदि मनाया भी, तो उसका जल्दी ही अन्त कर दिया । अगर सच्ची बात कही जाय, तो मेरे लिए यह असम्भव था, कि मैं अपनी मामी बुकोलां की कल्पना शोक के काले कपड़े पहने हुए कर सकूं, ठीक वैसे ही, जैसे कि मैं अपनी मां को रंगीन कपड़े पहने कल्पित नहीं कर सकता था । जहां तक मुझे याद पड़ता है, हमारे आने के दिन मामी ल्युसिल बुकोलां ने मलमल का फ्राक पहन रक्खा था। कुमारी ऐशबर्टन अपने हमेशा के शान्त स्वभाव के अनुसार मेरी मां को समझाने का प्रयत्न कर रही थीं।

उसने धीरे से कहा—"आखिरकार, सफेद कपड़ा भी तो सोग की निशानी है।" इस पर मां ने चिल्लाकर कहा—"वह जो लाल शाल उसने अपने कन्धों पर लपेट रक्खा था, क्या वह भी सोग की निशानी है ? फ्लोरा, तुम भी अजीब हो ।"

मुझे केवल गर्मियों की छुट्टियों में ही अपनी मामी को देखने का मौका मिलता था और निःसन्देह गर्मी के कारण ही वह खुले गले के हलके बोडिस पहने रखती थी। मैं सदा उसे इसी तरह के वस्त्र पहने देखता था। लेकिन जो रंगीन शाल उसने अपने कंधों पर डाल रखा था,

उसकी अपेक्षा भी मां को उसके खुले गले से बहुत चोट पहुँची थी।

ल्युसिल बुकोलां बहुत ही सुन्दर थी। मेरे पास अब तक उसकी एक छोटी-सी तस्वीर सुरक्षित है, जिसमें वह ठीक वैसी ही दिखाई देती है, जैसी कि वह उन दिनों थी। वह इतनी युवती प्रतीत होती थी, कि लोग उसे उसकी अपनी बेटियों की बड़ी बहन समझ सकते थे। तस्वीर में वह एक ओर झुकी बैठी है, ठीक जैसे कि वह हमेशा बैठा करती थी। उसका सिर उसके बाएं हाथ पर टिका है। उसकी छोटी उंगली बड़ी नजाकत के साथ उसके होंठों की ओर मुड़ी हुई है। अपने घुंघराले और घने बालों को उसने बड़े-बड़े छेदवाली जाली से संभाल रक्खा है, और वे आधे खुले हुए उसकी गर्दन पर लटक रहे हैं। उसके खुले गले के फ्राक से इटैलियन मोजेक का एक लाकेट ढीले-ढाले काले मखमली फीते से बंधा हुआ लटक रहा है। उसकी काली मखमली पेटी, जिसमें खूब बड़ी लटकती हुई गांठ बंधी है, और कुर्सी के पीठ पर लटकती हुई खूब चौड़े किनारेवाली उसकी गरम टोपी——इन सब चीजों से उसका अल्हड़पन टपकता है। उसके दाएं हाथ में एक बन्द पुस्तक है और वह नीचे की ओर लटक रही है।

ल्युसिल बुकोलां जाति से क्रेऑल् थी, उसे अपने मां-बाप के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात न था। वह उनसे बहुत छोटी उम्र में बिछुड़ गई थी। मां ने मुझे बाद में बताया, कि वह अनाथ और सब तरफ से परित्यक्त थी। इसी दशा में पादरी वांतिये के परिवार ने उसे अपने यहां शरण दे दी थी, क्योंकि तब तक उनके अपने कोई सन्तान पैदा नहीं हुई थी। कुछ समय बाद वे मार्तिनिक छोड़कर लहाव्र में आ बसे और ल्युसिल को भी साथ लेते आये। बुकोलां परिवार भी वहां ही रहता था। वांतिये और बुकोलां परिवार का एक दूसरे के घर बहुत आना-जाना था। मेरे मामा उन दिनों किसी विदेश में बैंक में नौकर थे। तीन वर्ष पश्चात् वे घर आए और उन्होंने किशोरी ल्युसिल को देखा। उसके प्रेम में पड़ उन्होंने विवाह का प्रस्ताव उसके सामने रक्खा। इस प्रस्ताव से उनके माता-पिता और

मेरी मां को अत्यधिक दुःख हुआ । ल्युसिल की आयु तब सोलह वर्ष की थी । इस बीच श्रीमती वांतिये भी दो बच्चों की मां बन चुकी थीं । वह अपने बच्चों पर अपनी पालिता कन्या का प्रभाव पसन्द नहीं करती थी । इस पालिता कन्या के स्वभाव में निरन्तर कुछ अजीब बातें प्रकट हो रही थीं, जिनसे श्रीमती वांतिये अपनी सन्तान को बचाना चाहती थीं । साथ ही, इस परिवार की दशा भी ठीक नहीं थी । मां ने ये सब बातें मुझे यह स्पष्ट करने के लिए बताई थीं, कि वांतिये ने उसके भाई के प्रस्ताव को क्योंकर खुशी से मान लिया था। इन बातों के अतिरिक्त मेरा यह भी ख्याल है, कि कुमारी ल्युसिल के व्यवहार से उसके आश्रयदाता दिन पर दिन अधिक-अधिक भयंकर परेशानी अनुभव करने लगे थे । मैं लहाव्र के समाज को अच्छी तरह जानता हूँ और मेरे लिए यह समझ सकना कठिन नहीं है, कि इतना अधिक आर्कषण रखनेवाली उस लड़की को वहां के लोग किस निगाह से देखते होंगे । बाद में मैं पादरी वांतिये से भी अच्छी तरह परिचित हो गया था । वे सीधे स्वभाव के ऐसे भले आदमी थे, जो जटिल परिस्थितियों का सामना करने में असमर्थ होते हैं और बुराई तथा पाप का मुकाबला करने की भी शक्ति जिनमें नहीं होती। वे बेचारे तो उन दिनों उस परिस्थिति का इलाज अपनी शक्ति से एकदम बाहर पाते होंगे । श्रीमती वांतिये के विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता । वे अपने चौथे बच्चे की प्रसूति में मर गई । यह लड़का मेरी आयु का था, और पीछे से मेरा मित्र बन गया ।

ल्युसिल बुकोलां का हमारे जीवन के साथ बहुत कम सम्बन्ध था। जब तक हम दोपहर का खाना नहीं खा लेते थे, तब तक वह अपने कमरे से उतरकर नीचे नहीं आती थी और नीचे आते ही वह एक सोफा या आराम- कुर्सी पर लेट जाती थी। वह शाम तक वैसे ही पड़ी रहती । जब उठती, तब वैसे ही अलसाई हुई । कभी-कभी वह अपने रुमाल को माथे पर फेरने लगती थी, मानों पसीना पोछ रही हो, यद्यपि उसका माथा पूर्णतया

शुष्क होता था। उसके इस रुमाल से भी मैं बहुत आश्चर्य में पड़ जाता था। यह अत्यधिक वारीक था और उसकी खुशबू किसी फूल के बजाय एक फल से अधिक मिलती थी। उसकी घड़ी की जंजीर के साथ चांदी के ढक्कनवाला एक छोटा सा शीशा और कई और चीजें लटकती रहती थीं। कभी-कभी वह इस शीशे को निकालकर अपना मुंह देखने लग जाती थी और अपनी उंगली होंठों से गीला कर आंखों के कोने पोंछ डालती थी। उसके हाथ में एक किताब रहती थी, जो प्रायः सदा बन्द रहा करती थी, यद्यपि पढ़नेवाले पृष्ठों को बताने के लिए पुस्तक के बीच में एक पट्टी पड़ी रहती थी, जो सीपी की बनी हुई थी। जब कोई उसके पास जाता तो वह अपने स्वप्नों में इतनी डूबी रहती, कि उसे पता भी नहीं लगता था, कि बहुधा उसके बेपरवाह और थके हुए हाथ से या उसकी कुर्सी की पीठ से या उसके कपड़ों में उसकी रुमाल, या उसकी किताब या कोई फूल या पृष्ठ को अंकित करनेवाली तख्ती नीचे गिर पड़ा करती थी। अपने बच-पन का यह एक संस्मरण है, जो मैं आपको सुना रहा हूं। एक दिन जब मैंने उसकी पुस्तक उठा ली, तो मुझे यह देखकर कुछ संकोच और लज्जा अनुभव हुई, कि वह पुस्तक कविता की है।

शाम को भोजन के बाद ल्युसिल बुकोलां हम लोगों के साथ नहीं बैठती थी। वह जब पियानो बजाने लगती, उसे धीमे-धीमे ट्यून निकालने में बड़ा मजा आता था। कभी-कभी वह किसी परदे पर एक दम रुक जाती थी और उसी सरगम पर देर तक रुकी रहती थी।

जब मैं अपनी मामी के पास जाता, तो मुझे एक खास किस्म की बेचैनी महसूस होती थी। मेरे दिल में उसके लिए प्रशंसा और साथ ही साथ भय का भाव रहता था, और मैं बेचैन होकर घबरा सा जाता था। मैं किसी अज्ञात भावना से उसके खिलाफ हो गया था। मैं अनुभव करता था, कि वह मां और फ्लोरा ऐशबर्टन से नफरत करती है। कुमारी ऐशबर्टन उससे डरती है, और मेरी मां उसे पसन्द नहीं करती।

शायद उन्हीं गर्मियों में या उससे अगले साल, मुझे ठीक याद नहीं है, क्योंकि वह स्थान और वह दृश्य हमेशा एक से ही रहते थे, और इस विषय में मेरे संस्मरण कुछ मिश्रित से हो गए हैं, एक दिन मैं बैठक में एक किताब ढूंढ़ने के लिए गया। तब वह वहां मौजूद थी। सामान्यतया वह मेरी ओर कभी देखती भी नहीं थी, पर अब ज्यों ही मैं वहां से लौटने लगा, उसने मुझे आवाज दी—"जरोम, तुम इतनी तेजी से क्यों भागे जा रहे हो ? क्या तुम मुझसे डरते हो ?"

धड़कते हृदय से मैं उसके पास गया, और जबर्दस्ती मुस्कराने का यत्न करते हुए अपना हाथ मैंने उसकी ओर बढ़ा दिया। उसने एक हाथ से मेरा हाथ पकड़ा और दूसरे से मेरा गाल सहलाते हुए कहा—"इस बेचारे नन्हें को इसकी मां ने कैसे भद्दे कपड़े पहनाएँ हैं।"

मैं उन दिनों एक जरसी पहना करता था, जिसका कालर खूब बड़ा-बड़ा था। मेरी मामी ने उसे इधर-उधर खींचना शुरू कर दिया। उसने मेरी कमीज का बटन खोलकर कहा—"नाविकों के सूट में कालर बहुत खुले पहने जाते हैं।" फिर अपना छोटा-सा शीशा निकालकर मेरा मुंह अपने मुंह से सटाते हुए बोली—"देखा, अब तुम ज्यादा अच्छे दिखाई देते हो या नहीं।" उसने अपनी नंगी बांह मेरे गले में डाल दी और अपना हाथ मेरी कमीज में डालकर हंसकर बोली—"तुम्हें गुदगुदी लगती है या नहीं", और अपना हाथ और अन्दर को डाल दिया। मै इतने जोर से चौंका, कि मेरी कमीज फट गई। मेरा मुंह लाल हो गया और मैं जोर से भाग खड़ा हुआ। वह जोर से पुकारकर बोली—"छोटा-सा बेवकूफ !" मैं भागता हुआ बगीचे के दूसरी तरफ चला गया। वहां आकर पानी की छोटी-सी टंकी में मने अपना रुमाल भिगोया और अपने माथे, मुंह, गर्दन और शरीर के उन सब अंगों को, जिन्हें उस औरत ने छुआ था, खूब रगड़-रगड़कर मल-मल कर धोया।

कभी-कभी ल्युसिल बुकोलां को दौरे पड़ते थे। ये दौरे अकस्मात्

पड़ते थे और इनके कारण सारा घर ऊपर से नीचे तक उलट-पुलट जाता था। कुमारी ऐगब्रर्टन बच्चों को एक ओर हटा ले जाती थीं और उनका ध्यान दूसरी ओर बंटाने की कोशिश करती थीं। लेकिन वे भयंकर चीखें, जो बैठक या सोने के कमरे में आती थीं, न दबाई जा सकती थीं और न उनका सुनना रोका जा सकता था। मेरे मामा अपने होश-हवाश खो बैठते थे। तौलिया, ओ द कोलोन, ईथर आदि की खोज में मेरे मामा जिस तेजी से इधर-उधर भागते फिरते थे, उसकी आवाज स्पष्ट सुनाई दिया करती थी। शाम को जब मेरे मामा मेज पर आते थे, तो बहुत चिन्तित और बूढ़े से दिखाई देते थे। मेरी मामी तो उस समय तक भी इस लायक नहीं होती थी, कि मेज पर आ सके। दौरे के समाप्तप्राय होने पर ल्युमिल बुकोलां अपने बच्चों—राबेअर और ज्यूलिएत् को बुला भेजती थी, पर वह अलीसा को कभी नहीं बुलाती थी। इन उदासी से भरे अवसरों पर अलीसा अपने कमरे के द्वार बन्द कर अन्दर बैठ रहती थी। कभी-कभी उसका पिता भी उसके साथ ही बैठ जाता था और बहुधा वे दोनों बातें करते रहते थे।

मामी के दौरों का नौकरों पर भी बड़ा असर पड़ता था। एक दिन शाम को जब कि दौरा खास तौर पर जोर का था, मुझे मां के कमरे में बन्द कर दिया गया। वहां से यह नहीं दिखाई पड़ता था, कि बैठक में क्या हो रहा है ? इतने में सुनाई पड़ा, रसोईदारिन दौड़ती हुई चिल्ला रही थी—"हजूर, जल्दी आइए, बेचारी मालकिन मर रही हैं।" मामा ऊपर अलीसा के कमरे में थे। मां उन्हें बुलाने के लिए गई थी, रास्ते में ही उनकी भेंट हो गई। पन्द्रह मिनट बाद मैंने अपने कमरे की खिड़की से उनकी बातचीत सुनी। मेरी मां की आवाज मुझ तक पहुंच रही थी—"भाई, तुम जानते हो, यह सब क्या है ? यह एक अभिनय के सिवा और कुछ नहीं है।" उन्होंने 'अ-भि-न-य' शब्द के प्रत्येक अक्षर को अलग-अलग बोल कई बार दोहराया।

यह घटना पितृ-वियोग के दो वर्ष बाद और छुट्टियों के आखिरी दिनों

में घटी। इसके बाद मामी से मेरी देर तक मुलाकात नहीं हुई। इससे पूर्व कि मैं उस शोकप्रद घटना का उल्लेख करूं, जिसने कि हमारे पारिवारिक जीवन को सर्वथा छिन्न-भिन्न कर दिया, एक और ऐसी बात हुई, जिसने ल्युसिल बुकोलां के प्रति मेरे उस भाव को पूर्णतया घृणा के रूप में बदल दिया, जो अब तक अनिश्चित और अस्पष्ट-सा था। पर इस घटना का वर्णन करने से पहले मैं आपको अपनी ममेरी बहन के विषय में कुछ बतला देना चाहता हूं। अभी तक मैं इस योग्य नहीं हुआ था, कि अलीसा बुकोलां के सौन्दर्य के प्रति आकर्षण अनुभव कर सकता। मैं जो उसकी ओर आकृष्ट हुआ, और उसके स्नेह के बन्धन में बंध गया, उसका कारण उसका शारीरिक सौन्दर्य न होकर उसके अन्य आकर्षण थे। निःसन्देह उसकी सूरत अपनी मां से बहुत मिलती-जुलती थी। पर उसकी आंखों का भाव इतना भिन्न था, कि बहुत समय तक दोनों की सूरत के सादृश्य का भान ही मुझे नहीं हुआ। मैं मुखाकृति का वर्णन करने में असमर्थ हूं। नख, शिख यहां तक कि आंखों का रंग भी मुझे हमेशा भूल जाते हैं। मुझे तो केवल उसकी मुस्कराहट का भाव याद है। यह मुस्कराहट उस समय भी इतनी करुण थी। उसकी भवों की रेखा भी मेरे मानस-पटल पर अंकित है। यह भ्रूरेखा उसकी आंखों से असाधारण तौर पर दूर थी और आंखों के ऊपर एक गोलाई में खिंची थी। मैंने वैसी भौहें कहीं नहीं देखीं। हां, फ्लोरेन्स शहर में दान्ते के समय की एक मूर्ति है, और मेरा ख्याल है, कि बेआत्रिस् के बचपन में उसकी भौहें उसके सदृश ही दीर्घ गोलाकार थीं। उनकी वजह से उसकी दृष्टि में, नहीं उसकी सम्पूर्ण आकृति में एक प्रश्नात्मक भाव आ गया था। यह भाव चिन्ता और साथ ही विश्वास से पूर्ण था, पर था जोरदार तरीके से प्रश्नात्मक। आपको मैं बताऊंगा, कि इस प्रश्नात्मक भाव ने मेरे ऊपर कैसे अधिकार किया, और कैसे वह मेरा जीवन बन गई।

फिर भी ज्यूलिएल् को उससे ज्यादा सुन्दर समझा जा सकता था। उसके प्रसन्न स्वभाव और स्वास्थ्य ने उसमें एक चमक-सी उत्पन्न कर दी थी।

लेकिन उसका यह सौन्दर्य अपनी बहन के लावण्य की तुलना में एक बाह्य वस्तु-सा प्रतीत होता था और यह बात प्रथम दृष्टिपात् में ही सबके सम्मुख स्पष्ट हो जाती थी। जहां तक मेरे ममेरे भाई रावेअर का सम्बन्ध है, उसमें ऐसी कोई खास बात न थी, जो उसकी विशेषता कही जा सके। वह एक ऐसा लड़का था, जिसकी आयु लगभग मेरे बराबर थी। मैं उसके और ज्यूलिएत् के साथ खेलता और अलीसा के साथ बातचीत किया करता था। वह हमारे खेलों में बहुत कम शामिल होती थी। विगत काल में मैं जहां तक अपनी स्मृति को ले जा सकता हूं, उसकी गम्भीर मन्द-मन्द मुस्काती और विचारशील मूर्ति मेरे सम्मुख आ उपस्थित होती है। हम क्या बातें किया करते थे ? दो बच्चे आपस में क्या बातें कर सकते थे ? यह मैं आपको क्षणभर बाद बतलाने की कोशिश करूंगा। इस बीच में मैं अपनी मामी के विषय में जो कुछ कहना चाहता हूं, कह लूं, जिससे उसके विषय का वक्तव्य समाप्त हो जाय।

पिता की मृत्यु के दो वर्ष पश्चात् मां और मैं ईस्टर की छुट्टियां बिताने ल्हाव्र गये। हम बुकोलों के साथ नहीं ठहरे। उनके शहर के घर में काफी जगह नहीं थी। हम मां की बड़ी बहन के पास टिके। उसका घर काफी बड़ा था। मौसी प्लांतिये बहुत दिनों से विधवा हो चुकी थी और मुझे उनसे मिलने का मौका बहुत कम मिला था। मैं उनके बच्चों को भी मुश्किल से जानता था, वे उम्र में मुझसे बहुत बड़े और स्वभाव में भी भिन्न थे।

'प्लांतिये-निवास'––उनका मकान ल्हाव्र में इसी नाम से प्रसिद्ध था। वह ठीक शहर के बीच में न होकर उस छोटी-सी पहाड़ी के आधे रास्ते पर अवस्थित था, जिसे 'कोत्' कहते थे और जो नगर के ठीक सामने विद्यमान थी। बुकोलों परिवार का मकान बाजार के निकट था। बुकोलों के मकान से प्लांतिये-निवास तक पहुंचने के लिए सीधी पगडंडी थी, जिससे होकर एक घर से दूसरे घर तक बहुत जल्दी पहुंचा जा सकता था। मैं दिन भर में

कई बार इस पगडंडी से लुढ़ककर नीचे आता और कई बार ऊपर चढ़ता था ।

उस दिन मैंने अपने मामा के यहां दोपहर का खाना खाया । भोजन के कुछ समय बाद मामा बाहर गये और मैं भी उनके आफिस तक साथ गया । फिर मां को लेने प्लांतिये-निवास गया । वहां जाकर सुना, कि वे मौसी के साथ बाहर घूमने गई हैं, और शाम से पहले नहीं लौटेंगी । मैं तत्काल शहर की ओर घूमने चल पड़ा, जहां मुझे अकेले स्वतन्त्रता के साथ घूमने का मौका बहुत कम मिलता था । मैं बन्दरगाह की ओर चल पड़ा । वहां समुद्री कुहासे के कारण उस दिन बहुत उदासी थी । मैं जहाजी घाटों पर एक या दो घंटे तक घूमता रहा । तब अकस्मात मेरी यह इच्छा हुई, कि लौटकर जाऊं और अलीसा को चौंका दूं, क्योंकि थोड़ी ही देर हुई, मैं उसके पास से आया था । मैं शहर में दौड़ता हुआ गया और बुकोलां के दरवाजे की घंटी बजाई । नौकरानी ने दरवाजा खोलकर मुझे अन्दर बुला लिया और रोककर बोली—"ऊपर मत जाओ, श्रीमान् जरोम, ऊपर मत जाओ । मालकिन को दौरा पड़ रहा है ।"

पर उसकी परवाह किये बिना मैं ऊपर दौड़ गया । मैं मामी से मिलने नहीं आया था.........

अलीसा का कमरा तीसरी मंजिल पर था । पहली मंजिल पर बैठक और खाने का कमरा था, दूसरी मंजिल पर मामा का कमरा था, जहां से आवाजें आ रही थीं । जिस दरवाजे के सामने से मुझे जाना था, वह खुला था, कमरे से काफी रोशनी आ रही थी और बाहर सीढ़ियों पर पड़ रही थी । मुझे डर लगा, कि कोई देख न ले । मैं क्षण भर को रुका और अंधेरे में छिप गया । वहां से मैंने जो कुछ देखा, उससे मुझे इतना आश्चर्य हुआ, कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । मामी कमरे के बीच में एक सोफे पर पड़ी थीं, परदे खींचकर फैलाए हुए थे, कमरा बत्तियों से भरे हुए दो झाड़ों की आनन्ददायक रोशनी से परिपूर्ण था । राब्रेअर और

ज्यूलिएत् उसके पैरों के पास बैठे थे । सिरहाने की ओर एक अजनबी नौजवान लेफ्टिनेन्ट की पोशाक पहने खड़ा था । आज उन बच्चों की वहां उपस्थिति मुझे बीभत्स मालूम पड़ती है । तब मैं भोलाभाला था । तब मैंने सोचा था, कि वे वहां किसी और वजह से नहीं, एक बीमार को ढाढ़स बंधाने के लिए थे । वे हंस रहे थे और अजनबी की ओर देख रहे थे । वह आवाज बना-बनाकर कह रहा था—"बुकोलां, बुकोलां, अगर मैं एक भेड़ का बच्चा पाल लूं, तो उसका नाम अवश्य ही बुकोलां रखूं ।" मामी भी जोर-जोर से हंस रही थी । मेरे देखते-देखते उसने एक सिगरेट निकाली और नौजवान को जलाने के लिए दी । मामी ने दो-चार कश खींचकर उसे फर्श पर गिरा दिया । नौजवान उसे उठाने के लिए झपटा । ऐसा प्रतीत हुआ, कि जैसे उसका पैर मफलर में अटक गया और वह घुटनों के बल मेरी मामी के सामने गिर पड़ा । इस बेवकूफी से भरे अभिनय में सबका ध्यान बंट गया और मैं सबकी दृष्टि बचाकर ऊपर को खिसक गया ।

मैं अलीसा के दरवाजे के बाहर जा पहुंचा । वहां मैं क्षण भर रुका, नीचे से जोर से हंसने और बोलने की आवाज आ रही थी । उसमें मेरे दरवाजा खट-खटाने की आवाज डूब गई, क्योंकि अलीसा ने उसका कोई जवाब नहीं दिया । मैंने दरवाजा ठेला, तो वह आवाज किए बिना खुल गया । कमरे में इतना अंधेरा था, कि मुझे अलीसा पहलेपहल नहीं दिखाई पड़ी । वह अपने पलंग से नीचे घुटनों के बल बैठी थी । उसके पीछे की खिड़की से डूबते हुए सूर्य की आखिरी रोशनी आ रही थी । मेरे पास आने पर वह मुड़ी, पर बगैर उठे हुए धीमी आवाज में बोली—"जरोम, तुम लौट क्यों आए ?" मैं उसे चूमने के लिए नीचे झुका, उसका सारा मुख आंसुओं से भीगा हुआ था ।

मेरा सारा जीवन उस एक क्षण में तय हो गया । आज तक भी मैं उस बात को एक यातनामयी पीड़ा के बिना याद नहीं कर सकता । निःसन्देह तब अलीसा के उद्वेग का कारण मुझे पूरी तरह समझ में नहीं [illegible]या था, लेकिन मैंने इस बात को गम्भीरतापूर्वक अनुभव कर [illegible]

और शोक का भार उसकी कांपती हुई आत्मा के लिए और सुबकियों से विचलित उसके नाजुक-से शरीर के लिए बहुत अधिक था।

वह घुटनों के बल बैठी रही और मैं उसके पास खड़ा रहा। मेरे हृदय में जो नवीन लहर उठ रही थी, उसको मैं अभिव्यक्त नहीं कर सका। पर उसका सिर मैंने अपनी छाती पर दबा लिया और अपने होंठ उसके माथे पर रख दिये। मेरी समग्र आत्मा इस तरह बाहर उमड़ पड़ी। उत्साह, आत्मसमर्पण और पुण्य की त्रिवेणी में गोता लगाते हुए और प्रेम तथा करुणा में सरोबोर होकर मैंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति से ईश्वर से प्रार्थना की और अपने को उस महती शक्ति के सम्मुख अर्पित कर दिया। मेरी समझ में मेरे जीवन का प्रयोजन इसके अतिरिक्त कुछ नहीं था, कि भय, बुराई और जीवन-संकट से उस बालिका की रक्षा की जाय। आखिर मैं भी घुटनों के बल बैठ गया। उस समय मेरा आभ्यन्तर और बाह्य सब प्रार्थना से परिपूर्ण था। मैंने अलीसा को अपने से सटा लिया और उसे अस्फुट स्वर में कहते सुना—"जरोम, उन्होंने तुम्हें देखा तो नहीं? नहीं देखा न? तुम जल्दी जाओ, वे तुम्हें देखने न पाएं।"

तब और भी धीमे स्वर में वह बोली—"जरोम, किसी से कहना मत......मेरे बेचारे पिताजी को भी कुछ मालूम नहीं है.................."

इसलिए मैंने अपनी मां को कुछ भी नहीं बतलाया। पर मौसी प्लांतिए और मेरी मां की कानाफूसी कभी खतम ही नहीं होने पाती थी और दोनों स्त्रियों के चेहरे पर एक अजीब रहस्यमयी मुसीबत का सा भय था। जब कभी मैं उनके इतने नजदीक पहुंच जाता था, कि उनकी बात सुन सकूं तो वे मुझे 'मेरे बच्चे, जाओ दूर जाकर खेलो' कहकर भगा देती थीं। इन सब बातों से यह मुझसे छिपा नहीं रहा, कि वे बुकोलां-परिवार के रहस्य से पूरी तरह अपरिचित नहीं थीं।

जैसे ही हम पेरिस लौटे, मां को ल्हाव्र बुलाने के लिए एक तार आया। मामी घर छोड़कर भाग गई थी।

मैंने कुमारी ऐशबर्टन से पूछा—"क्या किसी के साथ ?" मां मुझे उसी के पास छोड़ गई थीं। हमारी प्रिय वृद्धा मित्र ने जवाब दिया—"बेटा, तुम अपनी मां से पूछना। मैं तुम्हें कुछ भी नहीं बतला सकती।" उसको भी इस घटना से बहुत आघात पहुंचा था। दो दिन बाद वह और मैं मां के पास चले आए। शनिवार का दिन था। मैं अगले दिन अपने ममेरे भाई-बहनों से चर्च में मिलूं, एकमात्र यही विचार मेरे मन में था। अपने बचपन के कारण अपनी मुलाकात की उस पवित्र परिस्थिति को मैं बहुत महत्त्व देता था। मुझे मामी की जरा भी परवाह नहीं थी और मैंने निश्चय कर लिया था, कि इस विषय में मां से कुछ भी नहीं पूछूंगा।

उस छोटे से चर्च में उस दिन प्रातः बहुत आदमी नहीं थे। इसमें सन्देह नहीं, कि पादरी वांतिए ने जानबूझकर मसीह के इन शब्दों को प्रार्थना के लिए चुना था—"संकरे दरवाजे से अन्दर प्रवेश करने का प्रयत्न करो।"

अलीसा मुझसे कुछ कुर्सियां आगे बैठी थी। मैंने उसके चेहरे की छाया को देखा। मैं उसकी ओर इतने ध्यान से और इतनी तन्मयता से देख रहा था, कि मुझे ऐसा प्रतीत होता था, कि जिन शब्दों को मैं इतनी उत्सुकता से सुन रहा हूं, वे अलीसा द्वारा ही मुझ तक पहुंच रहे हैं। मामा मां के पास बैठे थे और रो रहे थे।

पादरी ने पहले मूल पाठ पढ़ा—"तुम संकरे दरवाजे से अन्दर प्रवेश करने का प्रयत्न करो। जो द्वार विशाल है और जो पथ चौड़ा है, वह विनाश की ओर ले जाता है। बहुत-से ऐसे हैं, जो उसका अवलम्बन करते हैं। वह दरवाजा संकरा है और वह रास्ता तंग है, जो जीवन की ओर ले जाता है। ऐसे विरले है, जो उसे ढूंढ़ निकालते हैं।"

तब अपने विषय के भिन्न-भिन्न विभागों को अधिक स्पष्ट करते हुए उसने पहले 'चौड़े पथ' की व्याख्या की। यह सब सुनते हुए मैं आत्मविस्मृत हो गया, और एक स्वप्न-सा देखने लगा। मुझे मामी का कमरा दिखाई दिया। वह मुझे लेटी पड़ी और हंसती हुए दिखाई दी। मुझे वह शानदार आफिसर

भी हंसता हुआ दिखाई दिया। हंसी और प्रमोद का विचारमात्र मुझे पाप और औचित्य की सीमा जान पड़ने लगा। मुझे प्रतीत होता, कि हंसी और विनोद अपराध की गर्हित अतिशयतामात्र हैं। पादरी ने आगे चलकर 'बहुत-से ऐसे हैं, जो उसका अवलम्बन करते हैं' की व्याख्या की। उसने तड़कीले-भड़कीले वस्त्र पहने एक हंसती हुई भीड़ का चित्र खींचा, जो हंसती खेलती छोटी-छोटी टोलियां बनाकर आगे बढ़ रही थी। यह भीड़ मुझे स्पष्टतया दिखाई दी, और मैंने महसूस किया, कि मैं उस भीड़ में सम्मिलित न हो सकूंगा, और न सम्मिलित होने की इच्छा ही करूंगा। क्योंकि उसके साथ मैं जो भी कदम उठाऊंगा, वह मुझे अलीसा से दूर—अति दूर ले जायगा। फिर पादरी ने मूल पाठ के प्रथम शब्दों को लिया और उनकी व्याख्या की और मुझे वह सँकरा दरवाजा दिखाई दिया, जिसमें प्रवेश करने का हमको प्रयत्न करना चाहिए। जिस स्वप्नावस्था में मैं विचर रहा था, उसमें मैं कल्पना करने लगा, कि एक अत्यन्त सँकरी गली है, जहां से मैं बहुत प्रयत्न और अतिशय पीड़ा के साथ गुजर रहा हूं। फिर भी मैंने इस मार्ग में एक दिव्य आनन्द का रसास्वादन किया। फिर उस द्वार ने अलीसा के कमरे के दरवाजे की आकृति धारण कर ली, और उसमें घुसने के लिए मैंने अपने को सुकोड़ लिया। मुझमें जो कुछ भी स्वार्थ-भावना थी, उसे हृदय से निकालकर मैंने अपने को हल्का कर लिया........."क्योंकि वह दरवाजा संकरा है, जो जीवन की ओर ले जाता है।" पादरी वांतिए का भाषण आगे बढ़ गया और मैं कल्पना करने लगा, कि मैं सब शोक और यातना से ऊपर हूं। मुझे एक पवित्र, दिव्य, रहस्यमय आनन्द का अनुभव होने लगा। इस आनन्द के लिए मेरी आत्मा प्यासी थी। मुझे प्रतीत हुआ, कि यह आनन्द वायोलिन की उस स्वर-लहरी के समान है, जो एक साथ उदात्त और कोमल है। यह आनन्द अग्नि की तीव्र शिखा के समान था, और इसमें मेरा और अलीसा का हृदय तपकर कुंदन बन रहा था। मुझे प्रतीत हुआ, कि हम दोनों उस ढंग के श्वेत वस्त्रों को धारण किए हुए, जिनका कि 'अपोकेलिप्स' में उल्लेख

है, और एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए आगे बढ़ रहे हैं और एक ही लक्ष्य हम दोनों के सम्मुख है।........................

यदि मेरे इन बचपन के स्वप्नों को पढ़कर किसी को हंसी आती है, तो परवाह नहीं। मैं अपने स्वप्नों को यथावत् बिना कोई भी परिवर्तन किए दोहरा रहा हूं। यदि इनमें कोई कमी है, तो वह शब्दों के प्रयोग और कल्पना के अधूरे चित्रण की है। मेरी उस समय की अनुभूति बिलकुल पूर्ण व स्पष्ट थी, और उसे मैं शब्दों में अविकल-रूप से अभिव्यक्त नहीं कर सकता।

"और ऐसे विरले हैं, जो उस रास्ते को ढूंढ़ निकालते हैं।" पादरी वॉतिए ने यह कहकर मूल पाठ को समाप्त किया। उसने समझाया, कि उस संकरे रास्ते को कैसे खोजा जा सकता है। "ऐसे बिरले हैं", मैंने तय किया, कि मैं उनमें से एक हूंगा।

उपदेश खतम होने पर, मैं नैतिकता की इतनी ऊंचाई पर पहुंच गया था, कि अपन ममेरे भाई-बहन को बिना मिले ही वहां से चला आया। मेरा स्वाभिमान मेरे निश्चय की परीक्षा लेना चाहता था। मैं अपना निश्चय कर चुका था। मैं सोचता था, कि अपने इस निश्चय से ही मैं अपने को अलीसा का सुयोग्य पात्र सिद्ध कर सकता हूं।

दूसरा अध्याय

इस तपोमयी शिक्षा के लिए मेरी आत्मा पहले से तैयार थी, स्वभावत: उसमें कर्त्तव्य-बुद्धि जागृत हो चुकी थी। मेरे माता-पिता ने बचपन से ही मेरी हार्दिक भावनाओं को सदाचार-मय नियंत्रण में रखने का प्रयत्न किया था। इस कारण और अपने माता-पिता के उदाहरण ने मेरी प्रवृत्तियों को उस ओर ढाल दिया, जिसे कि 'पुण्य' के नाम से सुनने का मैं अभ्यासी था। मेरे लिए आत्मनियंत्रण उतना ही स्वाभाविक था, जितना दूसरों के लिए भोग। जो कठोर जीवन मैं व्यतीत करता था, उससे ऊबना तो दूर रहा, उलटा मुझे उससे शांति मिलती थी। मैं भविष्य की प्रसन्नता के लिए इतना अधिक उत्सुक न था, जितना कि उसकी प्राप्ति के शाश्वत प्रयत्न के लिए। वास्तव में मैं प्रसन्नता और पुण्य को एक ही बात समझता था। नि:संदेह चौदह वर्ष के अन्य लड़कों के समान मैं अभी अनिर्धारित दशा में था, और किसी तरफ भी ढल सकता था। पर अलीसा के लिए मेरा जो प्रेम था, उसने मुझे उस मार्ग पर आगे बढ़ते जाने की प्रेरणा की, जिस पर मैं चल चुका था। एक आकस्मिक अन्तर्ज्योति ने मुझे अपने आप से परिचित करा दिया। मुझे प्रतीत हुआ, कि मैं एक चिन्तनशील, अर्धप्रस्फुटित और उत्कंठापूर्ण जीव हूं। दूसरों की मुझे कुछ भी परवाह नहीं है, और न ही मुझमें कोई विशेष उद्यम है। न ही मेरे मन में कोई महत्त्वाकांक्षा है, सिवाय इसके कि मैं अपने ऊपर विजय प्राप्त करूं। मुझे स्वाध्याय से प्रेम था, और मैं केवल उन्हीं खेलों को पसन्द करता था, जिनमें चिन्तन या प्रयत्न की आवश्यकता होती थी। अपनी आयु के साथियों से मैं बहुत कम मिलता था, उनके साथ विनोद में यदि मैं सम्मिलित होता था, तो केवल स्नेहवश या अपनी

मृदु प्रकृति के कारण। फिर भी आबेल वॉतिए से मेरी दोस्ती हो गई। वह अगले वर्ष पेरिस में मुझसे मिला और मेरे स्कूल में मेरी ही कक्षा में दाखिल हुआ। वह एक मधुर स्वभाव का मेहनती लड़का था। उसके प्रति मेरे हृदय में आदर की अपेक्षा स्नेह की भावना अधिक थी। वह एक ऐसा लड़का था, जिससे मैं फाँग्युस्मार और लहाव्र के विषय में बातचीत कर सकता था, जिनके विषय में मैं निरन्तर सोचता रहता था।

मेरा ममेरा भाई राबेअर बुकोलां भी उसी स्कूल में दाखिल हुआ। लेकिन वह हमसे दो श्रेणी नीचे था और मुझे केवल इतवार के दिन मिलता था। यदि वह मेरी ममेरी बहनों का भाई न होता, तो मुझे उसकी संगति में कोई आनन्द न आता, यद्यपि वह उनसे बिलकुल भिन्न स्वभाव का था।

मैं तब अपने प्रेम में बुरी तरह डूबा हुआ था, और एकमात्र उसकी दृष्टि से ही इन दोनों दोस्तियों का मेरी निगाह में कोई महत्त्व था। अलीसा मेरे लिए वह बहुमूल्य मणि थी, जिसका उल्लेख धर्म-ग्रंथ में आता है, और मैं वह व्यक्ति था, जिसने उसको प्राप्त करने के लिए सर्वस्व स्वाहा कर दिया था। मैं अभी बच्चा ही था। क्या मेरा प्रेम के विषय में बात करना, और अपनी ममेरी बहन के प्रति अपने भाव को प्रेम का नाम देना गलती है? बाद में जीवन में जो ज्ञान व अनुभव मुझे हुए, उनमें से कोई भी ऐसी बात मुझे ज्ञात नहीं है, जो इस संज्ञा के अधिक योग्य हो। बड़ा होकर जब मैं शरीर की भूख को अनुभव करने के लायक हो गया, तब भी मेरे इस भाव में कोई अधिक परिवर्तन नहीं हुआ और न मैंने अलीसा को पाने की उससे अधिक कोशिश की, जितनी कि मैं बचपन में उसके लिए अपने को योग्य बनाने की करता था। कर्म, प्रयत्न और पुण्यकार्य—इन सबकी भेंट मैंने रहस्यमय रूप से अलीसा के सम्मुख चढ़ा दी थी और अपने अन्दर पुण्य की इतने परिष्कृत रूप में अवतारणा कर ली थी, कि मैंने जो कुछ केवल उसके लिए किया, उसका ज्ञान भी उसे नहीं होने दिया। इस तरह मुझमें एक

प्रकार की संकोचशीलता अतिशय रूप से आविष्ट हो गई थी और मुझे ऐसा अभ्यास हो गया था, कि मुझे उस बात से जरा भी संतोष न होता था, जिसके लिए मुझे कोई भी उद्योग न करना पड़े, चाहे इससे मेरे आराम में कितनी ही बाधा क्यों न पड़े।

क्या मैं अकेला ही आत्मशुद्धि की प्रेरणा अनुभव करता था? मैं नहीं समझता, कि अलीसा पर भी इसका कोई प्रभाव था, या वह मेरे लिए भी कुछ करती थी, यद्यपि मेरे सारे प्रयत्न उसी के लिए थे। उसकी स्वाभाविक और बनावट-शून्य आत्मा की हरेक बात मेरे लिए बहुत अधिक सौन्दर्य की थी। उसके गुणों में इतनी स्वाभाविकता और लावण्य था, कि वे मेरे लिए बहुत सुखद थे। उसकी गंभीर आकृति उसकी भोली-भाली मुस्कराहट के कारण बहुत आकर्षक हो गई थी। जब वह आंख उठाकर देखती थी, तो उसकी वह करुण और मधुर प्रश्नात्मक दृष्टि मुझे याद आती है, और मैं समझ सकता हूं, कि अपनी मुसीबत में मेरे मामा को अपनी बड़ी बेटी से कैसी शांति, कैसा परामर्श और कैसा सहारा मिलता था। अगली गर्मियों में मैंने बहुधा उनको उससे बातचीत करते देखा था। वे व्यथा के कारण बहुत बूढ़े हो गए थे, भोजन के समय वे बहुत कम बात करते थे, कभी-कभी वे विनोद का जबर्दस्ती अभिनय करते थे, जो उनके मौन की अपेक्षा भी अधिक कष्टप्रद प्रतीत होता था। वे सायंकाल तक अपने अध्ययन के कमरे में बैठे-बैठे सिगरेट पीते रहते थे और तब अलीसा उनको बुलाने आती थी। उन्हें बाहर जाने के लिए प्रेरणा करनी पड़ती थी। अलीसा उन्हें एक बच्चे के समान बगीचे में ले जाती थी। वे फलों की क्यारियों में से होते हुए उन सीढ़ियों तक पहुंच जाते थे, जिनसे होकर सब्जी के बगीचे में उतरा जाता था। वहां पर हमने कुछ कुर्सियां डाल दी थीं।

एक दिन शाम को मुझे मकान के बाहर पढ़ते हुए बहुत देर हो गई थी और मैं एक बड़े वृक्ष की छाया में घास पर लेटा हुआ था। इतने में अलीसा

और मामा की बात करने की भनक कानों में पड़ी। इस पेड़ और फूलों की क्यारियों के बीच में लारल की बाड़ थी, जिसके कारण मैं उन्हें दिखाई तो नहीं देता था, पर मैं उनकी बात सुन सकता था। निःसंदेह वे राबेअर के विषय में बात कर रहे थे, कि इसी बीच में अलीसा ने मेरा नाम लिया। मैंने यहीं पर उनकी बातचीत सुननी आरम्भ की थी। मामा जोर देकर बोले—"हां! उसे काम करना हमेशा अच्छा लगेगा।"

मैं उनकी बात सुनना नहीं चाहता था। पहले मेरी इच्छा हुई, कि मैं यहां से चला जाऊं अथवा किसी तरह खड़खड़ाहट करके उनको जता दूं कि मैं यहां मौजूद हूं। पर क्या करूं? क्या खांसूं? या जोर से कह दूं—"मैं यहां हूं, मुझे आपकी बात सुन पड़ रही है।"

मुझे उनकी बातें सुनने की कोई उत्सुकता नहीं थी, पर संकोच के कारण मैं चुपचाप खड़ा रहा और उनकी बातें सुनता गया। इसके अतिरिक्त वे वहां से केवल गुजर रहे थे, इसलिए उनकी बातचीत मैं पूरी तरह से नहीं सुन सका। पर वे धीरे-धीरे टहल रहे थे। अलीसा की बांह पर हल्की-सी टोकरी थी, जिसमें वह अपनी आदत के अनुसार मुर्झाये हुए फूलों को चुन-चुनकर इकठ्ठा करती जाती थी, जो कि समुद्री कोहरे की अधिकता के कारण कच्चे ही गिर जाते थे। मैंने अलीसा की आवाज स्पष्ट तौर पर सुनी—"पिताजी, मेरे फूफा पालिसियेर क्या बहुत विशिष्ट व्यक्ति थे?"

मामा की वाणी अस्पष्ट और धीमी थी, इसलिए उनका उत्तर मुझे समझ में नहीं आया। अलीसा ने फिर पूछा—"आप समझते हैं, वे बहुत विशिष्ट थे?"

फिर अस्पष्ट उत्तर और फिर अलीसा की आवाज—"जरोम तो चतुर है, ठीक है न?"

मैं सुनने का प्रयत्न किए बिना कैसे रह सकता था? पर नहीं, मैं कुछ भी नहीं सुन सका।

अलीसा ने कहा—"आपका क्या विचार है ? क्या वह भी विशिष्ट व्यक्ति बनेगा ?"

अब मामा की आवाज ऊंची हो गई—"प्यारी बच्ची, पहले मैं यह जानना चाहूंगा, कि तुम्हारा 'विशिष्ट से' क्या मतलब है ? कोई आदमी दूसरों की निगाह में बड़ा हुए बिना भी विशिष्ट व्यक्ति हो सकता है। मनुष्यों की दृष्टि में बड़ा न होने पर भी ईश्वर की दृष्टि में बड़ा हुआ जा सकता है।"

अलीसा बोली—"हां, मेरा यही मतलब है।"

"पर अभी क्या कहा जा सकता है ? वह अभी बहुत छोटा है। हां, निस्संदेह वह बहुत होनहार है। पर सफलता के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है।"

"और अधिक क्या होना चाहिए ?"

"मेरी बच्ची, मैं इस विषय में क्या कह सकता हूं ? हां, इसके लिए विश्वास, अवलम्ब और प्रेम की आवश्यकता है ।

अलीसा ने बीच में टोककर पूछा—"अवलम्ब से आपका क्या अभिप्राय है ?

मामा ने उदासी भरे स्वर में कहा—"वह स्नेह और आदर, जो मुझे नहीं मिला है।"

इसके बाद उनकी आवाज मुझ तक नहीं पहुंच पाई। उस दिन शाम को जब मैंने प्रार्थना की, तो मुझे इस बात पर बहुत पश्चात्ताप हुआ, कि मैंने दूसरों की बातचीत को छिपकर सुना था, यद्यपि यह कार्य मैंने बिना किसी इरादे व इच्छा से किया था। मैंने निश्चय किया, कि अपनी ममेरी बहन के सामने मैं अपना कसूर मान लूंगा। संभवतः, अब मेरे हृदय में और अधिक जानने की उत्सुकता भी विद्यमान थी।

अगले दिन मेरी उससे पहली बात यही हुई। वह बोली—"लेकिन,

जरोम, इस तरह सुनना बहुत बुरा है। या तो तुम हमें बतला देते, कि तुम वहां थे या वहां से हट जाते।"

"मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं, कि मैंने सुना नहीं। तुम्हारी कुछ बातें मेरी कानों में जरूर पड़ गईं। और तुम लोग तो वहां से केवल गुजर रहे थे।"

"पर हम धीरे-धीरे जा रहे थे।"

"हां, लेकिन मैंने कोई बात मुश्किल से ही सुनी होगी। मैंने तो प्रायः एकदम ही सुनना बन्द कर दिया था। अच्छा, मामाजी ने क्या जवाब दिया था, जब तुमने उनसे यह पूछा था, कि सफलता के लिए क्या कुछ आवश्यक है।"

उसने हंसकर कहा—"जरोम, तुमने खूब अच्छी तरह सुन लिया है। तुम अब सिर्फ मजा लेने के लिए मुझसे दोहरवाना चाहते हो?"

"मैंने सिर्फ शुरू की बात सुनी थी, जब कि वे प्रेम और विश्वास के विषय में कह रहे थे।"

"उन्होंने पीछे से बतलाया, कि और भी बहुत-सी बातें आवश्यक हैं।"

"और इस पर तुमने क्या जवाब दिया?"

वह अकस्मात् बहुत गम्भीर हो गई।

"जब उन्होंने जीवन के अवलम्ब की बात कही, तो मैंने जवाब दिया, कि तुम्हारी मां तो हैं।"

"पर अलीसा, तुम जानती हो, वे हमेशा नहीं बैठी रहेंगी।—और साथ ही मां उस प्रकार से अवलम्ब नहीं हो सकती..........।"

उसने अपना सिर झुका लिया। और कहा—"उन्होंने भी यही उत्तर दिया था।"

मैंने कांपते हुए उसका हाथ पकड़ लिया।

"मैं भविष्य में जो कुछ बनना चाहता हूं, वह सब केवल तुम्हारे लिए ही है।"

"पर जरोम, शायद मैं भी तुम्हें छोड़कर चली जाऊं।"

मेरा हृदय मेरे मुंह तक आ गया।

"मैं तुम्हें कभी नहीं छोड़ूंगा।"

तब वह जरा सिर उठाकर बोली—"क्या तुम्हारे अन्दर इतनी शक्ति नहीं है, कि तुम जीवन-मार्ग पर अकेले चल सको? हममें से हरेक को परमार्थ की साधना अकेले ही करनी चाहिए।"

"पर तुम्हें मुझे वह मार्ग दिखलाना पड़ेगा।"

"तुम मसीह के सिवा किसी और को मार्ग-प्रदर्शक क्यों बनाना चाहते हो?...........क्या तुम यह नहीं समझते, कि ईश्वर की आराधना करते हुए जब हम दोनों एक दूसरे को भूल जाते हैं, तभी हम एक दूसरे का वास्तविक सान्निध्य प्राप्त करते हैं।"

मैंने बीच में टोककर कहा—"हां, वह हम दोनों को मिला दे, यही वरदान मैं सुबह-शाम प्रार्थना करते हुए भगवान् से मांगता हूं।"

"क्या तुम नही समझते, कि भगवान् में मिलन का क्या अर्थ है?"

"मैं भली भांति समझता हूं, कि इसका अभिप्राय यही है, कि अपने आराध्यदेव की पूजा में समग्र रूप से लगकर, उसमें तल्लीन होकर उससे एकात्मता स्थापित की जाय। मुझे ऐसा प्रतीत होता है, कि मैं केवल तुमसे एकात्म होने के लिए उस सत्ता की उपासना करता हूं, जिसकी मैं जानता हूं कि तुम भी पूजा करती हो।"

"तब तुम्हारी यह पूजा पवित्र नहीं है।"

"तुम मुझसे इतनी अधिक आशा मत करो। यदि तुम स्वर्ग में न हो, तो मैं उसकी भी कोई परवाह नहीं करूंगा।"

उसने अपनी अंगुली होंठों पर रखी और कुछ गंभीरता से उत्तर दिया—"तुम सबसे प्रथम भगवान् का राज्य और उसके न्याय की प्राप्ति की इच्छा करो।"

इन बातों को लिखते हुए मैं अनुभव करता हूं, कि बहुत-से लोग कहेंगे कि ये बातें बच्चों के लायक नहीं हैं। पर ऐसे लोग यह नहीं जानते, कि बहुत-से बच्चे कितनी समझदारी और गंभीरता से आपस में बातें किया करते हैं। इस दशा में मैं क्या करूं? क्या मैं उनका पक्ष लेने का प्रयत्न करूं? नहीं नहीं, मैं ऐसा नहीं करूंगा, और न ही मैं उनको ऐसा रंग देने की कोशिश करूंगा, जिससे कि वे अधिक स्वाभाविक प्रतीत हों।

हमारे पास बाईबल लेटिन भाषा में विद्यमान थी, और उसके बहुत-से लम्बे-लम्बे उद्धरण हमको कंठस्थ थे। अलीसा ने मेरे साथ ही लेटिन की शिक्षा प्राप्त की थी। कहने को तो उसने लेटिन इसलिए पढ़ी थी, कि अपने भाई की पढ़ाई में मदद कर सके, पर मेरा ख्याल है कि वस्तुतः वह उन सब विषयों को पढ़ना चाहती थी, जिन्हें मैं पढ़ता था। मेरी जो पढ़ाई अलीसा के साथ नहीं होती थी, मुझे उसमें आनन्द ही नहीं आता था। इससे मेरी पढ़ाई में कभी-कभी बाधा अवश्य पड़ती थी, पर यह नहीं समझना चाहिए, कि मेरे मानसिक विकास में इससे कोई रुकावट होती थी। इसके विपरीत मुझे ऐसा प्रतीत होता था, कि वह सब विषयों में आसानी से मुझसे आगे बढ़ जाती थी। मेरा मन जो भी मार्ग ग्रहण करता था, वह केवल उसका अनुसरण करने के लिए ही होता था। उस समय हम जिस बात में व्यापृत रहते थे, जिसे हम 'विचार' कहा करते थे, वह प्रायः निमित्त मात्र था, हमारे आलोकमय सम्मिलन का, हमारी भावनाओं के आवरण का और हमारे प्रेम के प्रच्छादन का।

संभवतः पहले पहल मेरी मां उस भावना के विषय में चिन्तित रही हो, जिसकी गंभीरता को उसने अभी तक पूरी तरह से नहीं समझा था। लेकिन अब जब कि उसकी शक्ति घटती जा रही थी, वह हम दोनों को एक समान मातृस्नेह से छाती से लगाना पसन्द करती थी। हृदय की जो बीमारी उसे बहुत दिनों से थी, वह अब ज्यादा जोर पकड़ती जाती थी। एक दिन उसे बहुत जोर का दौरा पड़ा, तब उसने मुझे बुलवा भेजा।

उसने कहा—"मेरे बच्चे, मैं बहुत बूढ़ी होती जा रही हूं। किसी दिन अकस्मात मैं तुम्हें छोड़ दूंगी।"

यह कहकर वह रुक गई। उसे सांस लेने में बहुत कष्ट होने लगा। तब मैं अपने को नहीं रोक सका, और यह बात कह ही बैठा, क्योंकि मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, कि मां मुझसे इस विषय में ही कुछ सुनना चाहती है—"मां,.........तुम जानती हो कि मैं अलीसा से शादी करना चाहता हूं।"

इसमें संदेह नहीं, कि मेरी यह बात मां के मन में थी, क्योंकि यह सुनते ही वह बोली—"जरोम, मैं तुमसे इसी विषय में कुछ कहना चाहती थी।"

मैंने अवरुद्ध गले से कहा—"मां, तुम्हारा क्या विचार है, क्या वह मुझसे प्यार करती है?"

उसने कई बार मृदु स्वर में दोहराया—"हां मेरे बच्चे, हां मेरे बच्चे।" उसे बोलने में कठिनाई महसूस हो रही थी। फिर भी उसने कहा—"तुम यह बात भगवान् पर छोड़ दो।"

मैं उसके ऊपर झुका हुआ था, उसने अपना हाथ मेरे सिर पर रख दिया और बोली—"मेरे बच्चे, ईश्वर तुम्हारी रक्षा करें, ईश्वर तुम दोनों की रक्षा करें।"

यह कहते-कहते उसे झपकी आ गई, और मैंने उसे जगाने की कोशिश नहीं की।

फिर हमारी इस विषय में कभी बातचीत नहीं हुई। अगले दिन सवेरे मां की तबियत कुछ अच्छी थी। मैं फिर स्कूल चला गया और इस अर्धगुप्त बात पर मौन का पर्दा पड़ गया। और ज्यादा मुझे जानना भी क्या था? अलीसा मुझे प्यार करती है, इसमें मुझे जरा भी संदेह नहीं था। यदि संदेह की कोई गुंजाइश होती भी, तो भी उस शोकमयी घटना के कारण, जो शीघ्र ही घटित हुई, वह मेरे हृदय में अंकुरित न होने पाता।

एक दिन सांझ के समय मां बहुत शांति के साथ चिर-निद्रा में सो गई।

उस समय कुमारी ऐशबर्टन और मैं उनके पास थे। जिस आख़िरी दौर के कारण उनकी मृत्यु हुई, वह शुरू-शुरू में पहले दौरों की अपेक्षा अधिक खराब नहीं प्रतीत होता था। अन्त निकट आने पर ही वह भयप्रद हो गया था और हमें अपने किसी रिश्तेदार को बुलाने का समय नहीं मिला। अपनी वृद्धा मित्र के साथ मैं माता के शव के पास रात भर बैठा रहा। मैं अपनी मां को बहुत प्यार करता था। मुझे इससे हैरानी होती थी, कि यद्यपि मैंने आंसू बहुत अधिक बहाये, फिर भी हृदय ने शोक के आघात को बहुत तीक्ष्ण-रूप से अनुभव नहीं किया। यदि मैं रोता था, तो वह इसलिए कि मुझे कुमारी ऐशबर्टन पर दया आती थी। उनकी सहेली उनसे इतने वर्ष छोटी थीं, पर भगवान् ने उन्हें उनसे पहले ही उठा लिया। मेरे हृदय में यह विचार गुप्त रूप से विद्यमान था, कि इस शोक-घटना से मैं अपनी ममेरी बहन के अधिक समीप पहुंच सकूंगा, और यह विचार मेरे मन में शोक-भावना की अपेक्षा भी अधिक प्रबल था।

मामा अगले दिन सुबह आए। उन्होंने मुझे अपनी बेटी की एक चिट्ठी दी। वह मौसी प्लान्तिए के साथ एक दिन बाद आई थी।

उसने लिखा था—"....जरोम, मेरे दोस्त, मेरे भाई, मुझे बहुत दुःख है, कि मैं उनकी मृत्यु से पहले उनसे दो बातें भी नहीं कर सकी। इससे उन्हें वह अपार संतोष प्राप्त होता, जिसकी उन्हें अभिलाषा थी। वे मुझे क्षमा करेंगी। ईश्वर भविष्य में हम दोनों को पथ-प्रदर्शन करेगा। मेरे बेचारे दोस्त, नमस्कार।

मैं हमेशा से भी ज्यादा प्यार के साथ तुम्हारी हूं।

तुम्हारी अलीसा"

इस पत्र का क्या अभिप्राय हो सकता है, वे शब्द क्या थे? जिनके न कह सकने का उसे खेद था। वे इसके सिवा और क्या हो सकते थे, जिनसे वे हमारे भविष्य को एक सूत्र में बांध देती। मैं अभी इतना छोटा था, कि एक दम उससे विवाह की प्रार्थना नहीं कर सकता था। इसके अतिरिक्त उसकी

स्वीकृति की मुझे आवश्यकता भी नहीं थी। क्या इससे पहले भी ही हम एक सूत्र में बद्ध नहीं हो चुके थे ? हमारा प्यार हमारे रिश्तेदारों से छिपा नहीं था। मां के समान मामा भी उसके विरुद्ध नहीं थे। वे मेरे साथ पुत्र-तुल्य व्यवहार करने लग गये थे।

ईस्टर की छुट्टियां कुछ ही दिनों बाद पड़ीं। मैं उनमें लहाव्र गया। वहां मैं मौसी प्लांतिए के घर सोता था और प्रायः सब समयों का खाना मामा बुकोलां के घर खाता था।

मेरी मौसी फेलिसी प्लांतिए बहुत अच्छी स्त्री थीं। पर मैं या मेरी ममेरी बहनें, किसी की भी उनसे बहुत घनिष्ठता नहीं थी। वह हमेशा इतनी व्यग्रता में रहती थीं, जैसे उन्हें सांस लेने की भी फुरसत न हो। उनकी भावभंगिमा में कोमलता नहीं थी और उनकी वाणी भी मधुर नहीं थी। उनके अत्यधिक स्नेह-प्रदर्शन से हम घबरा उठते थे। इस बात की परवाह किये बिना कि कब क्या समय है, दिन में अनेक बार वह आवेश में आ जाती और तब उनके स्नेह की बाढ़-सी आ जाती थी। मामा बुकोलां उनको काफी प्यार करते थे। पर जिस स्वर में वे उनसे बात करते थे, उससे हमारे लिए यह समझ सकना कठिन नहीं था, कि उन्हें मौसी की अपेक्षा मेरी मां ज्यादा प्रिय थी।

एक दिन शाम को वह बोलीं—"मेरे बच्चे, इस साल गर्मियों की छुट्टियों में तुम्हारा क्या करने का विचार है, यह मुझे मालूम नहीं। पर मैं अपना प्रोग्राम बनाने से पूर्व यह जानना चाहूंगी, कि तुम्हारा क्या इरादा है ? यदि मैं तुम्हारे काम आ सकूं ....।"

मैंने उत्तर दिया—"इस विषय में मैंने अभी अधिक तो सोच-विचार नहीं किया है। पर मैं शायद कुछ घूमूं-फिरूं।"

वह बोलीं—"यहां और फांग्युस्मार दोनों जगह तुम्हारा स्वागत है। तुम्हारे वहां जाने से तुम्हारे मामा और ज्यूलियेत् दोनों को प्रसन्नता होगी।"

"आपका मतलब अलीसा से है ?"

"हां, हां, मुझे माफ करना.......पर तुम क्या विश्वास करोगे ? मेरा विचार था, कि तुम ज्यूलियेत् को प्यार करते हो। लगभग एक महीना हुआ, जब तुम्हारे मामा ने मुझे इस विषय में बतलाया था। तुम जानते ही हो, कि तुम सब बच्चों से मैं कितना प्यार करती हूं। पर मैं तुम लोगों से भली भांति परिचित नहीं हूं, क्योंकि मैं तुम्हारे संपर्क में बहुत कम रही हूं और फिर मैं बहुत सूक्ष्मदर्शिनी भी नहीं हूं। मैं हमेशा तुम्हें ज्यूलियेत् के साथ खेलते देखती थी..........मेरे मन में आया, वह इतनी सुन्दर है और साथ ही इतनी खुशमिजाज भी।"

"जी हां, मैं अभी तक उसके साथ खेलना पसंद करता हूं। पर प्यार तो मैं अलीसा को ही करता हूं।"

"ठीक है, ठीक है, इस विषय में तुम पूर्णतया स्वतंत्र हो। जहां तक मेरा संबंध है, मैं उससे बहुत कम परिचित हूं। वह अपनी बहन की अपेक्षा कम बातचीत करती है। मैं समझती हूं कि जब तुमने उसे चुना है, तो उसके लिए उपयुक्त कारण अवश्य होगा।"

"पर मौसीजी, प्यार करने के लिए मैंने उसे नहीं चुना। और मैंने यह भी कभी नहीं सोचा कि क्या कारण है जो मैं उसे........।"

"जरोम, नाराज न होना। मेरा कोई खास अभिप्राय नहीं था। लो, तुमने मुझे यह भी भुलवा दिया, कि मैं कहना क्या चाहती थी। हां, मैं समझती हूं, मुझे ख्याल आया, तुम्हारी शादी के बाद यह सब कुछ खतम हो जायगा। अभी मां की मृत्यु को बहुत दिन नहीं हुए हैं, शोक के इस समय में सगाई करना तो ठीक नहीं है, और फिर तुम्हारी आयु भी कम है। मेरा विचार था, क्योंकि अब तुम्हारी मां नहीं है, इसलिए तुम्हारा फांग्युस्मार ठहरना बहुत मुनासिब नहीं समझा जायगा।"

"पर मौसीजी, इसीलिए तो मैंने घूमने-फिरने की बात कही थी।"

"ठीक है मेरे बच्चे, मेरा विचार था कि फांग्युस्मार में मेरी उपस्थिति

से मामला आसान हो जायगा और इसीलिए मैंने गर्मियों का कुछ हिस्सा खाली रखने का निश्चय किया है।"

"यदि मैं कुमारी ऐशबर्टन को बुलाऊं, तो वे खुशी से आ जायंगी।"

"हां, हां, मैं जानती हूं कि वे तो आ ही जायंगी। पर इतना ही काफी नहीं है। मैं भी आऊंगी। मैं यह तो नहीं कहती, कि मैं तुम्हारी बेचारी मां का स्थान ले सकूंगी।" यह कहते-कहते वे सुबक-सुबककर रोने लगीं। "लेकिन मैं घर-गृहस्थी की देख-भाल कर सकती हूं। और हां, तुम्हें, तुम्हारे मामा और अलीसा को कोई असुविधा न होगी।"

मौसी फेलिसी का यह भ्रम था, कि उनकी उपस्थिति से कोई लाभ होगा। यदि सच कहा जाय, तो उनके कारण हमको असुविधा ही थी। जैसा कि वे पहले ही निश्चय कर चुकी थीं, जुलाई के शुरू में वे फांग्युस्मार आकर रहने लगीं। कुमारी ऐशबर्टन और मैं भी शीघ्र वहां पहुंच गये। मौसीजी घर-गृहस्थी की देख-भाल करने में अलीसा की सहायता के नाम से आई थीं। लेकिन जो घर हमेशा इतना शांत रहता था, उसे उन्होंने अपने निरन्तर शोर से परिपूर्ण कर दिया था। उन्हें इस बात का बड़ा उत्साह था, कि अपने को हमारे अनुकूल बनावें, और जैसा कि वे कहा करती थीं— "सब काम सहूलियत से चलता रहे।" पर इसके लिए जो कुछ वे करती थीं, उससे मैं और अलीसा दोनों ही बहुत परेशान थे, और उनकी उपस्थिति में हमारे मुंह से बोल भी नहीं निकलता था। उन्होंने समझा होगा, कि हम उनकी बहुत उपेक्षा करते हैं.....और यदि हम चुप न भी रहते, तो भी क्या वे हमारे प्रेम की प्रकृति को समझ सकतीं? इसके विपरीत, ज्यूलियेत् का चरित्र इस प्रदर्शनमय भावुक प्रकृति के बिलकुल अनुकूल था। वह अपनी छोटी भतीजी के लिए जो हमेशा इतनी अधिक पसन्द का भाव प्रकट करती थीं, शायद उसी के कारण मौसीजी के प्रति मेरे प्रेम के भाव में एक विशेष आक्रोश का असर रहता था।

एक दिन सुबह डाक आने पर उन्होंने मुझे बुला भेजा।

उन्होंने कहा—"बेचारे जरोम, मुझे बहुत दुःख है, यहां तक कि मेरा दिल टूट गया है। मेरी लड़की बीमार है, और वह मुझे बुला रही है। अब मुझे तुम्हें छोड़कर जाना ही होगा।......."

निरर्थक लोकापवाद से डरकर मैं मामाजी के पास गया। मैं नहीं जानता था, कि मौसीजी के चले जाने पर मैं फांग्युस्मार में ठहरने का साहस कर सकूंगा या नहीं। लेकिन मेरे पहले शब्दों को सुनते ही वे बोल उठे—"जो बात सीधी-सादी है, क्या उसमें भी मेरी बहन उलझनें पैदा कर सकती है ? जरोम, तुम हमारे पास से क्यों चले जाओगे ? क्या तुम बिलकुल मेरे बच्चे के समान ही नहीं हो ?"

मौसीजी फांग्युस्मार में मुश्किल से पन्द्रह दिन ठहरी थीं। उनके जाते ही घर में शान्ति का वातावरण छा गया। वहां एक बार फिर वह गम्भीरता व्याप्त हो गई, जो प्रसन्नता और हर्ष को उत्पन्न करती थी। मेरे शोक से हमारे प्रेम में कमी नहीं आई थी, अपितु उसमें इससे वृद्धि ही हुई थी। अब जो हमारा एकरस जीवन प्रारम्भ हुआ, उसमें हमारे हृदयों की जरा-सी भी धड़कन सुनी जा सकती थी, ठीक उस प्रकार जैसे कि किसी ऊंचे स्थान पर हलका-सा शब्द भी प्रतिध्वनि के रूप में गूंज उठता है।

मौसीजी के चले जाने के बाद, मुझे याद पड़ता है, हम एक दिन शाम को उनके विषय में बातें कर रहे थे।

हम कह रहे थे—"कितनी अशान्त है वह ! क्या यह सम्भव है, कि जीवन-प्रवाह ने उनकी आत्मा में जरा-सी भी शान्ति नहीं छोड़ी है। प्रेम की सुन्दर मूर्ति, तुम्हारे प्रतिबिम्ब का यहां क्या स्वरूप है ?" हमें गैटे के वे शब्द स्मरण थे, जो उसने श्रीमती स्टाइन के सम्बन्ध में लिखे थे—"उसकी आत्मा में दुनिया का प्रतिबिम्ब बहुत सुन्दर दिखाई देगा।" फिर तुरन्त ही हमने विचारात्मक गुणों को सबसे ऊंचा स्थान देते हुए एक प्रकार की शृंखला-सी बना ली। मामाजी अब तक चुपचाप बैठे हमारी बातें सुन रहे थे। वे एक करुण मुस्कराहट के साथ हमारी भर्त्सना करते हुए

बोले—"मेरे बच्चो, भगवान् टूटी हुई प्रतिमा में भी निवास करता है। हमें किसी मनुष्य के जीवन के कुछ क्षण देखकर ही उसके सम्बन्ध में अपना मत नहीं बना लेना चाहिए। मेरी बहन की जो बातें तुम्हें नापसन्द हैं, वे उन परिस्थितियों के परिणाम हैं, जिनसे मैं भली भांति परिचित हूं। इसीलिए मैं उसकी तुम्हारे समान कड़ी आलोचना नहीं कर सकता। यौवन का एक भी मोहक गुण ऐसा नहीं है, जिसका बुढ़ापे में ह्रास नहीं हो जाता। फेलिसी की जिस बात को तुम अशान्ति कहकर पुकारते हो, शुरू में वही अत्यन्त मनमोहक उत्साहशीलता, भावुकता और लावण्य के रूप में थी।

"मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं, कि तुम जो कुछ आजकल हो, हम लोग इससे बहुत भिन्न नहीं थे। जरोम, मैं तुम्हारे जैसा था। शायद यह सादृश्य उससे भी अधिक था, जितना कि मैं कल्पना करता हूं। जैसी ज्यूलियेत् अब है, फेलिसी ठीक वैसी ही थी—यहां तक कि शारीरिक आकृति में भी। मैं कई बार उस सादृश्य को देखकर चौक पड़ता हूं।"

वे अपनी बेटी की ओर मुड़कर बोले—"उसकी आवाज ठीक तुम्हारी जैसी थी, वह मुस्कराती भी ठीक ऐसे ही थी। तुम्हारा बैठने का जो ढंग है, जैसे तुम कई बार अपनी कोहनियों को सामने टेककर और अपने माथे को मुड़ी हुई उंगलियों का सहारा देकर कोई काम न करते हुए चुपचाप बैठ जाती हो, ठीक वैसे ही वह भी बैठा करती थी, यद्यपि अब वह इस ढंग को खो चुकी है।"

कुमारी ऐशबर्टन मेरी ओर मुड़कर बहुत धीरे से बोलीं—"अलीसा और तुम्हारी मां में बहुत समानता है।"

उस साल की ग्रीष्म ऋतु बहुत शानदार थी। सारी दुनिया चमकीले नीले रंग में स्नान की हुई मालूम पड़ती थी। हमारे उत्साह ने बुराई और मौत पर विजय पा ली थी। अंधेरा हमारे सामने से दूर हो गया था। प्रतिदिन प्रातःकाल मैं प्रसन्नता से भरा हुआ जगता था और आते हुए दिन के स्वागत के लिए तैयार हो जाता था.....। जब मैं उन दिनों की याद करता

हूं, तब वे अपने प्रफुल्ल रूप में मेरे सामने चित्रित हो जाते हैं। अलीसा की आदत रात को बड़ी देर तक बैठे रहने की थी। ज्यूलियेत् उसकी अपेक्षा जल्दी जाग उठती थी और मेरे साथ बगीचे में निकल जाती थी। वह अपनी बहन और मेरे बीच में सन्देश-वाहिका का काम करती थी। मैं अविराम-रूप से उसके साथ अपने प्रेम की बातें करता रहता था और वह उनको सुनते-सुनते कभी थकती नहीं थी। अलीसा के प्रति प्रेम का आधिक्य होने से मुझे उसके सामने प्रेम-प्रदर्शन में संकोच और झिझक महसूस होती थी। जो बातें मुझे उससे कहने की हिम्मत नहीं होती थी, वह मैं ज्यूलियेत् से बेधड़क कह डालता था। अलीसा को भी बच्चों के इस खेल में मजा आता था और वह इस बात से प्रसन्न होती थी, कि मैं उसकी बहन से इस प्रकार खुशी-खुशी बात करता था। वह इस बात का ख्याल नहीं करती थी, या ख्याल न करने का नाटक करती थी, कि वास्तव में तो हम अलीसा के विषय में ही बातें किया करते थे। ओह! सर्वोत्कृष्ट प्रवंचनामय प्रेम! ओह, अतिशयता-पूर्ण प्रेम! तुम अपने किन छिपे हुए साधनों से हमको हंसी-खुशी से आंसुओं की ओर, और अत्यन्त निर्द्वन्द्व आनन्द से पुण्य-साधना की ओर ले गए।

गर्मी इतनी शीघ्रता से बीत गई, कि उसके जल्दी-जल्दी उड़ते हुए दिनों की प्रायः कोई भी बात आज मेरे स्मृति-पटल पर अंकित नहीं रह गई है। उन दिनों की और कोई घटना थी ही क्या, सिवा हमारी बातचीत के और पढ़ाई के।

छुट्टियों के आखिरी दिनों में एक दिन सुबह अलीसा ने मुझसे कहा—"मुझे एक बहुत बुरा स्वप्न आया है। मैं जीवित हूं और तुम्हारी मृत्यु हो गई है। कितनी भयंकर बात थी यह, साथ ही यह बात इतनी असम्भव थी, कि मैंने समझने का प्रयत्न किया, कि तुम केवल अनुपस्थित हो। हम जुदा हो गये थे। पर मैं अनुभव करती थी, कि तुम तक पहुंचने का कोई न कोई साधन अवश्य है। मैं उसे जानने का प्रयत्न करने लगी। मैंने सफल होने का इतना प्रयत्न किया, कि उसने मुझे जगा दिया।

"आज सुबह मालूम होता था, कि अभी तक मैं स्वप्न के प्रभाव से मुक्त नहीं हुई। ऐसा प्रतीत होता था कि मैं अभी तक स्वप्न ही देख रही हूं। मैंने अनुभव किया, कि मैं अभी तक तुमसे विमुक्त हूं, और बहुत लम्बे समय तक विमुक्त रहूंगी......" तब वह बहुत धीमे स्वर में बाली—"यहां तक कि मुझे अपना सारा जीवन—सम्पूर्ण जीवन ही इस प्रयत्न के लिये अर्पण करना आवश्यक होगा।"

"क्यों?"

"हम दोनों में से प्रत्येक को फिर से मिलने के लिए बहुत अधिक प्रयत्न करना होगा।"

मैंने इन शब्दों की गम्भीरता को नहीं समझा, या शायद मैं उनकी गम्भीरता को समझते हुए डरता था। धड़कते हुए हृदय से और उत्साह के एक आकस्मिक प्रदर्शन के साथ मानो उसकी बात का खण्डन करते हुए मैंने कहा—"मुझे तो आज यह स्वप्न आया, कि मेरी-तुम्हारी शादी होनेवाली है, और इतने पक्के तौर पर कि मृत्यु के अतिरिक्त अन्य कोई भी बात हम लोगों को जुदा नहीं कर सकती।"

उसने पूछा—"क्या तुम समझते हो, कि मृत्यु हमें जुदा कर सकती है?"

"मैं समझता हूं, कि............."

"इसके विपरीत, मेरा विचार है, कि मृत्यु उन दोनों को मिला देती है—हां, हां, मिला देती है, जो जीवन में जुदा रहे थे।"

इस सारी बातचीत ने हम पर इतना गम्भीर प्रभाव डाला, कि जिन शब्दों को हमने इस्तेमाल किया था, उनकी गूंज मैं अब तक भी सुन सकता हूं। पर फिर भी उनकी गम्भीरता को मैंने बहुत दिनों तक अनुभव नहीं किया था।

ग्रीष्म-ऋतु का अन्त हो गया था। जहां तक आंख जाती थी, प्रायः सब मैदान अब आकस्मिक रूप से खाली हो गये थे, और उनका दृश्य अब बहुत निराशापूर्ण दिखाई देता था।

(यूरोप के ठण्डे देशों में गर्मी सितम्बर के अन्त तक रहती है। उसके बाद पतझड़ और सर्दी का मौसम आता है, जबकि जमीन पर प्रायः बसन्त ऋतु के आने तक एक तिनका भी हरा नहीं दिखाई देता।) मेरे जाने से पहले दिन शाम को—नहीं, दो दिन पहले शाम को मैं ज्युलियेत् के साथ बाहर निकला और हम निचले बगीचे के सिरे पर झाड़ियों तक घूमते हुए चले गये।

उसने पूछा—"कल तुम अलीसा को क्या सुना रहे थे ?"

"तुम्हारा मतलब कब से है ?"

"जब तुम पत्थरों के बेंच पर बैठे हुए हमसे पीछे छूट गये थे।"

"हां, मुझे ख्याल आया, बोदलेअर की कुछ कविताएं थीं।"

"वे कौन-सी थीं ? क्या तुम उन्हें मुझे नहीं सुनाओगे ?"

" 'शीघ्र ही हम रात्रि के शीत-अन्धकार में डूब जावेंगे' मैंने कुछ भद्दे तरीके से सुनाना प्रारम्भ किया। पर जैसे ही मैंने शुरू किया, उसने मुझे रोक दिया और कांपती हुई आवाज में ये पंक्तियां पढ़ी—'विदा ! हमारी अत्यन्त छोटी ग्रीष्म ऋतु की चमक सदा कायम रहे।' "

मैंने बड़े आश्चर्य से कहा—"क्या ! तुम भी इन्हें जानती हो। मैं समझता था, कि तुम्हें कविता का जरा भी शौक नहीं।"

वह मानो जबर्दस्ती की हंसी हंसती हुई बोली—"क्यों ! क्योंकि तुम मुझे कभी सुनाते नहीं हो इसलिए। शायद तुम कभी-कभी सोचने लग जाते हो, कि मैं तो बिलकुल बेवकूफ हूं।"

"यह तो बिल्कुल सम्भव है, कि कोई आदमी बहुत बुद्धिमान् तो हो, पर उसे कविता का बिलकुल भी शौक न हो। मैंने तुम्हें कभी कोई कविता पढ़ते नहीं सुना, न तुमने मुझसे ही कभी सुनाने को कहा।"

"क्योंकि यह सब तो अलीसा के लिए सुरक्षित है।" वह कुछ मिनटों तक चुप रही, फिर एकदम पूछ बैठी—"क्या तुम परसों चले जाओगे ?"

"हां, जरूर।"

"इन सर्दियों में तुम क्या करोगे ?"

"नार्मल स्कूल (एकाल नार्मील) में मेरा यह पहला साल है।"

"तुम अलीसा से शादी कब करोगे ?"

"अपनी सैनिक सेवा समाप्त करने से पहले नहीं। और उसके बाद भी जब तक यह निश्चय न कर लूं, कि मुझे क्या करना है।"

"क्या अभी तक तुमने निश्चय नहीं किया ?"

"मैं अभी निश्चय नहीं करना चाहता। मुझे अनेक बातें अच्छी लगती हैं। पर मैं उस समय को अधिक से अधिक दूर रखना चाहता हूं, जबकि मैं अपने लिए कोई एक मार्ग अन्तिम रूप से निश्चित कर लूंगा, और उसी को स्थिर रूप से ग्रहण कर लूंगा।"

"किसी निश्चय पर पहुंचने की तुम्हारी हिचकिचाहट ही क्या तुम्हें सगाई को भी स्थगित रखने के लिए विवश करती है ?"

मैंने कुछ जवाब नहीं दिया और अपने कन्धे जरा हिला दिये।

उसने फिर पूछा—"तब तुम किस बात की इन्तजार कर रहे हो ? क्या कारण है, जो तुम अभी सगाई नहीं कर लेते ?"

"हम सगाई क्यों करें ? क्या यह ज्ञान पर्याप्त नहीं है, कि हम एक दूसरे के हैं और सदा रहेंगे ? दुनिया को यह जताने की क्या आवश्यकता है ? क्योंकि मैंने अपना सम्पूर्ण जीवन उसके अर्पण करने का निश्चय किया है, अतः क्या तुम समझती हो, कि हमें अपने प्रेम को प्रतिज्ञाओं द्वारा बांधना अधिक अच्छा होगा ? मैं तो ऐसा नहीं समझता। प्रतिज्ञाएं मुझे प्रेम का अपमान प्रतीत होती हैं। यदि मैं उस पर अविश्वास करूंगा, तभी मैं सगाई के लिए उत्सुक होऊंगा।"

"मैं अलीसा पर अविश्वास नहीं करती......"

हम धीरे-धीरे घूम रहे थे। हम बगीचे के उस भाग में पहुंच गये थे, जहां पहले एक बार मैंने अनिच्छा से अलीसा और उसके पिता की बातचीत को सुन लिया था। अलीसा को मैंने अभी बगीचे में जाते देखा था।

अकस्मात् मेरे मन में आया, कि शायद वह सीढ़ियों पर बैठी होगी, और उसी प्रकार हमारी बातचीत सुन लेगी। जो कुछ मैं उसे खुले तौर पर कहने की हिम्मत नहीं करता था, उसे कहने का मुझे लालच हो आया। अपनी सूझ पर मुझे खुशी हुई।

अपनी आवाज कुछ ऊंची करके अपनी आयु की प्रदर्शन-शील उत्तेजना के साथ मैंने जोर देते हुए कहना शुरू किया—उस समय मैं अपने ही शब्दों में उलझा हुआ था, यहां तक कि मुझे ज्यूलियेत् की कही और बिन कही बातों को पूरी तरह सुनने और समझने का ध्यान तक न था—"ओह! जिस व्यक्ति को हम प्यार करते हैं, यदि केवल हम उसकी आत्मा में शीशे के समान झुककर झांक सकें और जो मूर्ति उसमें प्रतिबिम्बित है, उसे देख सकें! उसको भी उसी तरह समझ सकें, उससे भी अधिक अच्छी तरह समझ सकें, जैसे कि हम अपने को समझते हैं।—सुकुमार मनोवृत्ति में कितनी शान्ति है! प्रेम में कितनी पवित्रता है।" ज्यूलियेत् उस समय भावावेश में आ गई थी। मैंने समझा कि यह मेरी वाग्मिता के प्रवाह का प्रभाव है! उसने यकायक अपना मुंह मेरे कंधों पर छिपा लिया।

"जरोम, जरोम, मैं चाहती हूं कि मुझे यह निश्चय हो जाय, कि तुम उसे प्रसन्न रख सकोगे। यदि उसे तुम्हारे द्वारा भी कष्ट पहुंचा, तो मैं समझती हूं, मैं तुम्हें घृणा करने लग जाऊंगी।"

मैंने अपने हाथ को उसकी कमर में डालकर और उसका मुंह ऊपर उठाते हुए कहा—"ज्यूलिएत्, तब मैं अपने से भी घृणा करने लग जाऊंगा। मैं क्यों अभी से कोई कार्य नहीं चुन लेना चाहता, अगर यह तुम जानती? शायद मैं उसके साथ ही जीवन को अधिक अच्छी तरह शुरू कर सकूं? क्योंकि मेरा सारा भविष्य उसी पर अवलम्बित है। मैं वह कुछ भी नहीं बनना चाहता, जो मैं उसके बिना बन सकूंगा..........."

"और जब तुम उससे इस तरह की बातें करते हो, तो वह क्या कहती है?"

"मैं उससे इस तरह की बातें कभी नहीं करता, कभी भी नहीं, और यह भी एक कारण है, जो अब तक हमारी सगाई नहीं हुई है। हम दोनों में ब्याह का ख्याल कभी नहीं उठता, न इस बात का ही कि हम भविष्य में क्या करेंगे ? अहा, ज्यूलियेत ! उसके साथ जीवन बिताना मुझे इतना सुन्दर प्रतीत होता है, कि उससे इस विषय में बात करने की मैं हिम्मत ही नहीं कर सकता। क्या तुम यह बात समझती हो ?"

"तुम चाहते हो, कि यह प्रसन्नता उसे आश्चर्य के रूप में प्राप्त हो ?"

"नहीं, यह बात नहीं है। मुझे डर लगता है, कि कहीं मैं उसे डरा न दूं। क्या तुम समझ गई ? मुझे भय है, कि वह असीम प्रसन्नता, जो मुझे दिखाई दे रही है, कहीं उसे डरा न दे। एक दिन मैंने उससे पूछा, कि क्या वह देश-देशान्तर भ्रमण करना चाहती है। उसने कहा कि वह कुछ भी नहीं चाहती है, उसके लिए यह जानना ही काफी है, कि विदेश हैं और वे सुन्दर हैं और अन्य लोग उसकी यात्रा कर सकते हैं।"

"और तुम, जरोम, क्या तुम देश-देशान्तर घूमना चाहते हो ?"

"हां, सब कहीं। उसके साथ---मुझे सारा जीवन एक लम्बी यात्रा के समान प्रतीत होता है---पुस्तकों में, मनुष्यों के बीच में या देश-देशान्तरों में। क्या तुमने कभी, 'लंगर उठाना' शब्दों के अभिप्राय पर विचार किया है ?"

उसने धीरे से कहा---"हां, मैं उन पर बहुधा विचार करती हूं।"

लेकिन मैंने, उसकी बात पूरी सुनी भी नहीं, और जैसे हम बेचारी जख्मी चिड़ियों को उनकी ओर ध्यान दिये बिना जमीन पर गिरने देते हैं, वैसे ही उसके शब्दों की ओर ध्यान दिए बिना मैं आगे बोलता गया---"एक दिन रात को चलना पड़ा, प्रातः जब सर्वत्र उज्ज्वल प्रकाश छा जाय, तब जाग उठना, और लहरों की अनिश्चितता में दोनों का एक साथ एकान्त अनुभव करना और बचपन में नक्शे पर जिस बन्दरगाह को देखा था, जहां सब कुछ अपरिचित है, वहां पहुंच जाना।

"मै कल्पना की आंखों मे तुम्हें जहाज मे पुल पर उतरते देख रही हूं, और अलीसा भी तुम्हारी बांह का सहारा लिये तुम्हारे साथ है।"

मैने हंसते हुए कहा—"हम पोस्ट-आफिस जल्दी-जल्दी जायेंगे, उस चिट्ठी को पाने के लिए, जिसे ज्यूलियेत् ने हमें लिखा होगा....."

"फांग्युस्मार मे, जहां वह पीछे रह गई होगी और जो तुम्हें इतना छोटा-सा इतना उदासी-पूर्ण और इतनी दूर ......याद आवेगा......"

क्या यही ठीक-ठीक उसके शब्द थे ? मुझे पक्का निश्चय नही है, क्योंकि मै फिर दुबारा कहता हूं, कि मैं अपने प्रेम के भावों से इतना पूर्ण था कि उनके सामने मुझे और किसी भाव का मुश्किल से ही पता रहता था।

हम सीढियों के नजदीक पहुंच गये थे और पीछे को मुड़ने ही वाले थे, जबकि अलीसा अकस्मात् छाया में से बाहर निकल आई। वह इतनी पीली पड़ गयी थी, कि ज्यूलियेत् उसे देखकर चिल्ला उठी। अलीसा जल्दी मे लड़खड़ाते स्वर में बोली—"हां, मेरी तबियत ठीक नही है। हवा बहुत ठण्डी है। मेरा ख्याल है, मैं अन्दर चली जाऊं तो अच्छा होगा।" और हमको वहां वैसा ही छोड़कर वह घर की ओर तेजी से चली गई।

जैसे ही वह जरा दूर हुई, ज्यूलियेत् ने जोर से कहा—"हम जो बातें कर रहे थे, वे उसने सुन ली है।"

"पर हमने ऐसी तो कोई बात नही कही, जो उसे बुरी लगती। इसके विपरीत—"

उसने कहा—"मुझे अकेला छोड दो" और वह अपनी बहन के पीछे तीर की तरह चली गई।

उस रात मै सो नहीं सका। अलीसा खाना खाने नीचे आई थी, पर खाते ही सिर-दर्द की शिकायत करती हुई एकदम चली गई थी। उसने हमारी बातचीत में ऐसा क्या सुन लिया था? जो बातें हमने की थीं, उन्हें मैं अपने मन में चिन्तापूर्वक दोहराने लगा। तब मुझे ख्याल आया, कि शायद ज्यूलियेत् की कमर में बांह डालना और उससे इतना सटकर चलना मेरी गलती थी।

पर यह तो मेरी बचपन की आदत थी और अनेक बार अलीसा ने हमें इस प्रकार घूमते देखा था। ओह! मैं भी कैसा अन्धा था, मैं अपनी ही गल्तियां ढूंढ़ रहा था और एक क्षण के लिए भी ज्यूलियेत् की बातों पर मेरा ध्यान नहीं गया था। उसकी बातों को मैंने सावधानी से नहीं सुना था, और उसकी स्मृति भी मुझे बहुत कम थी। शायद उनको अलीसा ने अच्छी तरह सुन लिया था। पर कोई बात नहीं, अपनी चिन्ताओं से मेरा मन इतना भटक गया और अलीसा के प्रति अविश्वास के विचार से मैं इतना डर गया—और किसी खतरे की तो मुझे कल्पना ही नहीं हो सकती थी—कि मैंने निश्चय कर लिया, कि अब मैं उचित-अनुचित के विचारों और भयपूर्ण सम्भावनाओं पर विजय पाकर अगले दिन ही अलीसा से सगाई कर लूंगा। मैंने इस बात की परवाह नहीं की, कि ज्यूलियेत् को मैंने क्या कहा था। सम्भवतः उसने जो कुछ कहा था, उससे मैं बहुत प्रभावित हो गया था।

मुझे उस दिन शाम को जाना था। मैंने समझा, कि वह इसी कारण उदास होगी, वह मुझसे बचती हुई सी प्रतीत होती थी। सारा दिन बीत गया और मैं उसे अकेले में न मिल सका। मुझे भय था, कि कहीं मुझे उससे बात किये बिना ही न चले जाना पड़े। इस बात ने शाम का खाना खाने से पहले मुझे उसके कमरे में जाने के लिए विवश किया। वह मूंगे का नेकलेस पहन रही थी। उसकी बांहें उसका बटन बन्द करने के लिए ऊपर उठी हुई थीं। दरवाजे की ओर पीठ किये वह आगे को झुकी हुई थी और दो जली हुई बत्तियों के बीच में रक्खे हुए शीशे में वह कन्धे से ऊपर अपने शरीर को देख रही थी। शीशे में से ही उसकी निगाह पहले मुझ पर पड़ी और वह वहीं से कुछ क्षणों तक मेरी ओर बगैर मुड़े देखती रही।

वह बोली—"ठहरो, क्या मेरा दरवाजा बन्द नहीं था?"

"मैंने खड़खड़ाया था, पर तुमने जवाब नहीं दिया। अलीसा, तुम जानती हो, मैं कल जा रहा हूं?"

उसने कोई जवाब नहीं दिया। नेकलेस को लगाने में उसे सफलता

नहीं हुई थी, अतः उसने उसे नीचे रख दिया। 'सगाई' शब्द मुझे बर्बर और नग्न-सा प्रतीत होता था। मुझे याद नहीं, उसके स्थान में मैंने क्या शब्द इस्तेमाल किया था। जैसे ही अलीसा ने मेरा अभिप्राय समझा, वह मुझे लड़खड़ाती-सी मालूम पड़ी और सहारे के लिए कार्निश पर झुक गई। लेकिन मैं स्वयं भी इतना कांप रहा था, कि भय के कारण उसकी ओर देखने से बचता रहा।

मैं उसके पास ही था, अपनी आंखें ऊंची किये बगैर मैंने उसका हाथ पकड़ लिया। उसने अपने को छुड़ाया नहीं। पर अपना मुंह थोड़ा झुकाकर और मेरा हाथ थोड़ा उठाकर अपने होंठ उसने उस पर रख दिये और मेरे सहारे आधी झुकी हुई धीरे से बोली––नहीं जरोम, नहीं, ऐसा न करो। मेहरबानी कर हमारी सगाई न होने दो।"

मेरा हृदय इतनी तेजी से धड़क रहा था, कि मालूम होता है, उसने उसे महसूस कर लिया। वह और अधिक कोमल स्वर में बोली–"नहीं, अभी नहीं............"

और जब मैंने पूछा––"क्यों ?"

वह बोली––"यह प्रश्न तो मुझे तुमसे करना चाहिए।"

मैं कल की बातचीत के विषय में उससे कुछ कहने की हिम्मत न कर सका, पर निःसन्देह उसने महसूस किया, कि मैं क्या सोच रहा था। और मानो मेरे विचार के उत्तर में वह मेरी ओर उत्सुकतापूर्वक देखती हुई बोली––"मेरे दोस्त, तुम गलती में हो। मुझे इतनी अधिक प्रसन्नता की जरूरत नहीं है। क्या जैसे हम हैं, वैसे ही काफी प्रसन्न नहीं हैं ?"

उसने मुस्कराने की कोशिश की पर व्यर्थ।

"नहीं, क्योंकि मैं तुम्हें छोड़कर जा रहा हूं।"

"सुनो जरोम, तुम आज मुझसे कुछ मत पूछो, साथ रहने के इन अन्तिम क्षणों को हमें खराब नहीं करना चाहिए। नहीं, नहीं, मैं हमेशा के समान ही

तुमको प्यार करती हूं। डरो मत। मैं तुम्हें पत्र लिखूंगी और सब कुछ समझा दूंगी। मैं तुम्हें कल लिखूंगी—मैं प्रतिज्ञा करती हूं, तुम्हारे जाते ही। अब तुम चले जाओ। तुम देखते हो, मैं रो रही हूं। अब मुझे अकेली रहने दो।"

उसने धीरे-धीरे अपने को मुझसे अलग किया और मुझे बाहर ढकेल दिया—वह हमारा अन्तिम नमस्कार था। उस शाम को मैं उससे फिर बात नहीं कर सका। अगले दिन सुबह जब मेरे जाने का समय हुआ, वह अपने कमरे में बन्द हो गई। मैंने उसे अपनी खिड़की में अन्तिम नमस्कार का हाथ हिलाते हुए देखा, जबकि वह मेरी गाड़ी को जाते हुए देख रही थी।

तीसरा अध्याय

मैं उस साल आबेल वानिए से बहुत कम मिल सका था। उसे अभी सैनिक सेवा के लिए बुलाया नहीं गया था, पर पहले ही उसने फौज में अपना नाम लिखा लिया था। इस बीच, मैं अपनी डिग्री-परीक्षा के लिए तैयारी में लगा हुआ था। मैं आबेल से दो साल छोटा था, और मैंने अपनी सैनिक सेवा को नार्मल स्कूल समाप्त करने तक के लिए स्थगित कर रखा था। स्कूल में हम दोनों को उस साल पहले सत्र की परीक्षा देनी थी।

हम दुबारा बहुत प्रसन्नता से मिले। सैनिक सेवा से छूटकर उसने एक मास से भी अधिक भ्रमण में व्यतीत किया था। मुझे भय था, कि वह बदला हुआ मिलेगा। पर उसके मनोमोहक गुणों में से कोई भी कम नहीं हुआ था। केवल आत्मविश्वास की मात्रा उसमें बढ़ गई थी। हमने सत्र के खुलने से पहले दिन तीसरा पहर ल्युक्सम्बूर के बगीचे में बिताया। मैं उससे कोई बात नहीं छिपा सका, मैंने अलीसा के साथ अपने प्रेम के विषय में उससे विस्तार के साथ बातचीत की, यद्यपि यह बात वह पहले से ही जानता था। पिछले साल उसने स्त्रियों का कुछ अनुभव प्राप्त कर लिया था। परिणामस्वरूप वह कुछ गर्व और कुछ बड़प्पन के भाव से बात कर रहा था। पर मैंने इसको बुरा नहीं माना। वह मुझ पर हंसने लगा, कि मैं अभी तक इस मामले को अन्त तक पहुंचाने में समर्थ नहीं हुआ था। उसने स्वतः-सिद्ध सिद्धान्त के रूप में इस बात का प्रतिपादन किया, कि स्त्री को फिर वापस लौटने का अवसर नहीं देना चाहिए। मैंने उसे बोलने दिया, पर अपने मन में सोचा कि उसकी सुन्दर युक्तियां मुझ पर अथवा अलीसा पर

लागू नहीं होतीं और उनसे केवल यही प्रकट होता है, कि उसने हम लोगों को समझा ही नहीं ।

अपने पहुंचने के अगले दिन मुझे निम्नलिखित पत्र मिला--

"मेरे प्यारे जरोम,

मैंने तुम्हारे सुझाव पर बहुत विचार किया है । (मेरा सुझाव ! सगाई का क्या सुन्दर नाम था) मेरा विचार है, कि मैं तुम्हारे लिए बहुत बड़ी हूं । शायद अभी तुम ऐसा नहीं समझते, क्योंकि अभी तक तुम्हें और स्त्रियों को देखने-सुनने का मौका नहीं मिला है । पर तुम्हारी हो जाने के बाद यदि मुझे मालूम पड़े, कि अब तुम मेरी कदर नहीं करते हो, तो मैं सोचती हूं, कि मुझे कितना कष्ट होगा । निःसन्देह यह पढ़कर तुम्हें बहुत गुस्सा आवेगा; मुझे प्रतीत होता है, मैं तुम्हें तर्क करते सुन रही हूं । मैं तुम्हारे प्रेम में सन्देह नहीं करती--मैं केवल तुम्हें कुछ और दिन इन्तजार करने को कहती हूं, जब तक कि तुम्हें जीवन से और अधिक परिचय नहीं हो जाता ।

यह निश्चित समझो, कि मैं केवल तुम्हारे विषय में ही कह रही हूं-- जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मुझे निश्चय है, कि मैं तुम्हें प्रेम करना कभी बन्द नहीं करूंगी ।

अलीसा"

एक दूसरे को प्रेम करना बन्द कर देना ! क्या इस तरह का प्रश्न भी उठ सकता था ? मुझे दुःख के बजाय आश्चर्य बहुत अधिक हुआ । मैं इतना व्याकुल हो गया था, कि यह पत्र आबेल को दिखलाने दौड़ा-दौड़ा गया ।

चिट्ठी पढ़ने के बाद, वह सिर हिलाकर और होंठों को भींचकर, जैसी कि उसकी आदत थी, बोला--"फिर तुम्हारा क्या करने का विचार है ?" मैंने निराशाजनक भाव प्रकट किया । "जो भी हो, मेरा ख्याल है, तुम उसे जवाब तो नहीं दोगे । यदि तुम स्त्रियों के साथ बहस शुरू

कर दो, तो सब मामला खतम है। मेरी बात सुनो; यदि हम शनिवार की शाम को लहाव्र पहुंचकर रात वहां सो जायं, तो इतवार की प्रातः फांग्यु-स्मार में बिता सकते हैं, और सोम की सुबह पहले लेक्चर के समय तक लौट आवेंगे। सैनिक सेवा के समय से मैं तुम्हारे घरवालों से नहीं मिला हूं। यह बहुत अच्छा बहाना है, और बहुत संगत है। अगर अलीसा ने इसे बहाना मात्र ही समझा, तो और भी अच्छा। जब तुम उसकी बहन से बात करोगे, तो मैं ज्यूलियेत् से मिलूंगा। तुम बचपन न दिखाना। यदि मैं सच कहूं, तो तुम्हारी कहानी में कोई ऐसी बात है, जो मुझे समझ में नहीं आई है। तुमने मुझे सब कुछ नहीं बताया है। परवाह नहीं, मैं बहुत शीघ्र तह तक पहुंच जाऊंगा। लेकिन खबरदार, उन्हें न मालूम पड़े, कि हम आ रहे हैं। हम तुम्हारी ममेरी बहन को चौंका देंगे और उसे संभलने का समय नहीं देंगे।"

जब मैं बगीचे का दरवाजा खोलकर अन्दर घुसा तो मेरा हृदय जोर से धड़क रहा था। ज्यूलियेत् हमें मिलने के लिए एकदम दौड़ती हुई आई। अलीसा तब कपड़ों के गोदाम में काम में लगी थी और उसने आने में कोई जल्दी नहीं की। जब आखिर वह बैठक में आई, हम मामाजी और कुमारी ऐशबर्टन से बातें कर रहे थे। यदि हमारे आकस्मिक आगमन से उसे कोई बेचैनी हुई, तो उसने उसका कोई चिन्ह प्रकट नहीं किया। मुझे आबेल के कथन का ध्यान था। अतः मैंने समझा, कि मुझसे मिलने के लिए अपने को तैयार करने में लगी रहने के कारण ही उसने मेरे सामने आने में इतनी देरी की। ज्यूलियेत् की अत्यधिक सजीवता के कारण वह बहुत अधिक मौन थी। मुझे लगता था, कि उसे मेरा आना अच्छा नहीं लगा। वह अपने व्यवहार से अपने इस भाव को प्रकट कर रही थी और मैं यह कल्पना नहीं कर सका, कि इसके पीछे कोई और सजीव भाव भी छिपा होगा। हम लोगों से कुछ दूर, खिड़की के नजदीक अलग एक कोने में बैठी हुई वह काढ़ने में डूबी हुई प्रतीत होती थी, और उसके धागों को वह मन ही मन

गिन रही थी। खुशकिस्मती से आबेल बातें करता जा रहा था, क्योंकि मैं तो एक शब्द भी नहीं बोल पा रहा था और यदि वह अपनी सैनिक सेवा वाले साल की और देश-भ्रमण की कहानियां नहीं सुना रहा होता, तो इस मिलन का प्रारम्भ बहुत निराशाजनक होता। स्वयं मामाजी भी असाधारण तौर पर विचारमग्न प्रतीत होते थे।

खाना खाते ही ज्यूलियेत् मुझे एक ओर ले गई और बगीचे में खींच ले गई।

जब हम अकेले हुए, तब वह बोली—"तुम्हारा क्या विचार है? मेरे सामने विवाह का प्रस्ताव रखा गया है। मौसी फेलिसी ने कल पिताजी को एक पत्र में लिखा है, कि उनके सामने 'नीम' के एक अंगूर के बगीचेवाले ने मेरे लिए प्रस्ताव भेजा है। वे लिखती हैं, कि वह व्यक्ति हर प्रकार से सन्तोषजनक है। उसने पिछले साल बसन्त में कुछ पार्टियों में मुझे देखा था और वह मुझे प्यार करने लग गया।"

वर के प्रति विरोध-भावना के सहज भाव से मैंने पूछा—"क्या उस महोदय ने तुम्हें कुछ प्रभावित किया था?"

"हां, मुझे उसका भली भांति ध्यान है। वह एक प्रकार का छोटा-सा डान क्विग्जोट है, संस्कृति से शून्य, अत्यन्त कुरूप, अत्यन्त असभ्य और बहुत हास्यास्पद। मौसी उसके सम्मुख अपनी गम्भीरता को कायम नहीं रख सकी थीं।"

मैंने हंसी से पूछा—"क्या उसके लिए कोई आशा है?"

"देखो जरोम! मजाक मत करो। एक आदमी जो व्यापारी है!.... यदि तुमने उसे देखा होता, तो तुम यह प्रश्न न पूछते।"

"और क्या मामाजी ने जवाब दे दिया है?"

"उन्होंने वही जवाब दिया, जो मैंने दिया था अर्थात् मैं अभी विवाह के लिए बहुत छोटी हूं।" फिर वह हंसते हुए बोली—"बदकिस्मती से मौसी-जी को इस एतराज का पहले से ही ध्यान था। बाद में उन्होंने लिखा है, कि

'महाशय एदुवार तिसिए—यह उन सज्जन का नाम है—प्रतीक्षा करने को तैयार हैं', उन्होंने इतनी जल्दी अपना विचार केवल इसलिए प्रगट कर दिया है, जिससे वर का चुनाव करते हुए उनका ध्यान रहे। बात बिलकुल फिजूल है, पर मैं क्या करूं ? मैं उसे यह तो नहीं कह सकती, कि वह बहुत बदशक्ल है ।"

"नहीं, पर तुम यह तो कह सकती हो, कि तुम एक ऐसे आदमी से शादी नहीं करना चाहती, जो अंगूर की बगीची की पेशा करता हो ।"

वह कन्धे सिकोड़कर बोली—"यह एक ऐसा कारण है, जिसे मौसीजी कभी समझ ही नहीं सकतीं। आओ, अब कुछ और बात करें। क्या अलीसा ने कभी तुम्हें कुछ लिखा है ?" यह बात उसने कुछ आवेश में आकर कही। वह बहुत उत्तेजित प्रतीत होती थी।

मैंने उसे अलीसा का पत्र पकड़ा दिया, जिसे उसने शर्म से लाल होते हुए पढ़ा। फिर जिस स्वर में उसने निम्न प्रश्न मुझसे पूछा, उसमें मुझे क्रोध का आभास प्रतीत हुआ।

"अब तुम क्या करोगे ?"

मैंने जवाब दिया—"क्या बताऊं, अब जब मैं यहां पहुंच गया हूं, मैं महसूस करता हूं, कि मेरे लिए लिखना अधिक सुगम होता। मुझे खेद है, कि मैं यहां आया। तुम्हारा क्या विचार है, उसका इस पत्र से क्या अभिप्राय है ?"

"मेरा विचार है, कि वह तुम्हें स्वतन्त्र छोड़ देना चाहती है ।"

"मैं स्वतन्त्रता की क्या परवाह करता हूं ? और क्या तुम जानती हो, कि वह मुझे इस तरह क्यों लिखती है ?"

उसने इतनी तेजी से 'नहीं' कहा, कि सचाई तक पहुंचे बिना भी उसी क्षण से कम से कम मुझे यह प्रतीत होने लगा, कि ज्यूलिएत् इस विषय में कुछ न कुछ जानती जरूर है। फिर हम सड़क पर जैसे ही एक मोड़ पर पहुंचे, वह अकस्मात् मुड़कर बोली—"अब मुझे जाने दो। तुम यहां

मुझसे बातें करने नहीं आये। हम काफी देर तक इकट्ठे रह लिये हैं।"

वह दौड़ती हुई घर चली गई। क्षण भर बाद मैंने उसे पियानो बजाते सुना।

जब मैं बैठक में पहुंचा, वह आबेल से बातें कर रही थी, जो उसके पास वहां आया था। वह बातें करते-करते बजाती भी जाती थी, पर इतनी बेपरवाही से कि ऐसा प्रतीत होता था, मानो वह यूंही कोई गीत निकाल रही हो। मैं उनके पास से चला आया, और बगीचे में जा पहुंचा। काफी देर तक मैं इधर-उधर घूमता रहा और अलीसा को ढूंढ़ता रहा। वह बगीचे के परले सिरे पर थी और निचली दीवार के पास फूल चुन रही थी। फूलों की सुगन्ध पेड़ों के नीचे पड़ी सूखी पत्तियों की गन्ध से मिल गई थी और वातावरण पतझड़ की मौसम से परिपूर्ण था। यद्यपि आसमान बिलकुल नीला था, जैसा कि प्राच्य देशों में होता है, पर अब सूर्य में केवल इतनी गर्मी रह गई थी, जिससे कि लताओं तक ही उष्णता पहुंच सके। अलीसा ने एक बड़ी-सी टोपी पहनी हुई थी, जैसी कि डच किसान पहना करते हैं। इसके कारण उसका चेहरा प्रायः छिप गया था। यह टोपी आबेल अपने भ्रमण से लाया था, और अलीसा ने इसे तुरन्त उससे ले लिया था। मेरे पास आने पर वह मुड़ी नहीं। पर उस हल्की-सी कंपकंपी से, जिसे वह दबा नहीं सकी, मैंने समझ लिया कि उसने मेरी पदचाप पहचान ली है। अब जो डांट-डपट मुझ पर पड़नी थी और जिस गम्भीर दृष्टि का मुझे सामना करना था, उसके लिए मैंने अपने को तैयार करना शुरू कर दिया। जब मैं और पास आया, तो कुछ भयवश मैंने अपनी गति धीमी कर दी। उसने अपना मुंह मेरी ओर नहीं मोड़ा, और एक जिद्दी बच्चे के समान अपना सिर झुकाये रक्खा। फिर भी फूलों से भरा हाथ पीठ पीछे लाकर उसने मुझे पास आने का संकेत किया। यह संकेत देखकर मुझे खिलवाड़ सूझा और उसके पास पहुंचने के बजाय मैं वहीं रुक गया। आखिरकार वह मुड़ी और सिर ऊपर करके कुछ कदम मेरी ओर बढ़ आई। मैंने देखा, उसके

चेहरे पर मुस्कराहट है। उसकी हास्यपूर्ण दृष्टि ने अकस्मात् सारी स्थिति इतनी सरल और सुगम कर दी, कि मैंने बिना किसी प्रयत्न के अपने स्वाभाविक स्वर में कहा—"तुम्हारा पत्र मुझे वापस लाया है।"

वह बोली—"मैंने भी यही समझा था" और भर्त्सना की कड़वाहट को वाणी के माधुर्यसे कम करके फिर बोली—"और मैं इससे कुछ परेशान भी हुई। मैंने जो कुछ लिखा था, वह तुम्हें पसन्द क्यों नहीं आया ? वह तो बड़ी सीधी-सादी बात थी ?" (अब मुझे ऐसा प्रतीत होता था, कि शोकातुरता और कठिनता केवल कल्पित थी, और उसकी सत्ता केवल मेरे ही मन में थी।) "हम जैसे थे वैसे ही खुश थे, और यह बात मैंने तुम्हें कह भी दी थी। अब उसमें परिवर्तन करने के लिए कहने पर यदि मैं इनकार करती हूं तो तुम्हें आश्चर्य क्यों होता है ?"

मुझे उसके सान्निध्य में इतनी प्रसन्नता, इतनी अधिक प्रसन्नता प्रतीत होती थी कि मेरे मन की एकमात्र इच्छा यह थी कि मेरा उससे किसी बात में मतभेद न हो, और मुझे इसके सिवा और कुछ भी अभीष्ट नहीं था, कि मैं मीठी-मीठी धूप में, फूलों की क्यारियों के किनारे उसका हाथ पकड़े घूमता रहूं और उसके चेहरे पर मधुर-मधुर मुस्कान खिली हो।

"अगर तुम्हें ऐसे ही अच्छा मालूम होता है" मैंने एक ही आघात से सब आशा-सूत्र छिन्न-भिन्न करते हुए और उस समय की पूर्ण प्रसन्नता का आनन्द उठाते हुए कहा—"अगर तुम्हें ऐसे ही अच्छा मालूम होता है, तो हम सगाई नहीं करेंगे। जब मुझे तुम्हारा पत्र मिला, तो मैंने समझा कि मैं जो प्रसन्न था, वह मेरी प्रसन्नता अब समाप्त हो रही है। मेरी जो प्रसन्नता थी, वह मुझे वापस दे दो, उसके बिना मैं जिन्दा नहीं रह सकता। मैं तुम्हें इतना प्यार करता हूं, कि जीवन भर तुम्हारी इन्तजार कर सकता हूं। पर अलीसा, यदि तुम मुझे प्यार करना बन्द कर दो, या मेरे प्रेम में सन्देह करो, तो वह मुझे असह्य होगा।"

"ओह ! जरोम, मुझे उसमें कोई सन्देह नहीं है।"

जब उसने यह बात कही, तो उसकी आवाज शान्त और साथ ही करुण थी। पर जिस मुस्कराहट से उसका मुख उज्ज्वल था, वह इतनी सुन्दर और शान्त थी, कि मुझे अपनी आशंका और प्रेम-प्रदर्शन पर लज्जा अनुभव हुई। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, कि उसकी वाणी में कारुण्य का जो स्पर्श मुझे अनुभव होता था, वह इन्हीं के कारण था। बिना किसी भूमिका के मैंने अपने नये कार्यक्रम, अपने अध्ययन और अपने जीवन के उस नये प्रकार के सम्बन्ध में बात शुरू कर दी, जिससे मुझे इतना अधिक लाभ पहुंचने की सम्भावना थी। नार्मल स्कूल की तब वह अवस्था नहीं थी, जो अब हो गई है। उसका कड़ा नियन्त्रण सुस्त और बिगड़ी हुई आदतों के नौजवानों के लिए चाहे कितना ही कष्टप्रद और उबानेवाला क्यों न हो, पर जो विद्यार्थी अध्ययनशील थे, उनके लिए तो वह सहायक ही था। मुझे प्रसन्नता थी, कि यह तपस्यामय जीवन मुझे उस सांसारिकता से बचाये रखता था, जिसके लिए मेरे हृदय में कोई आकर्षण नहीं था। यह ज्ञान, कि अलीसा को मेरे उसमें फंस जाने का डर था, मेरे मन में उसके प्रति घृणा पैदा करने के लिए काफी था।

कुमारी ऐशबर्टन उस फ्लैट को रक्खे हुए थीं, जहां वह पेरिस में मेरी मां के साथ रहा करती थीं। आबेल और मैं पेरिस में मुश्किल से ही किसी को जानते थे, अतः हर इतवार को हम कुछ समय उनके साथ अवश्य बिताते थे। हर इतवार को मैं अलीसा को पत्र लिखता था और अपने जीवन-क्रम की हरेक बात से उसे सूचित करता रहता था।

हम एक क्यारी के किनारे बैठे थे, जिसमें ककड़ी की बेल की बड़ी-बड़ी शाखाएं फैल रही थीं, पर फल जिसमें से सब तोड़ लिये गये थे। अलीसा मेरी बातें सुन रही थी और बीच-बीच में कुछ पूछती भी जाती थी। मैंने पहले कभी यह अनुभव नहीं किया था, कि उसके माधुर्य में इतनी उत्सुकता और उसके प्रेम में इतनी प्रबलता है। जिस प्रकार सम्पूर्ण रूप से निरभ्र नील गगन में कुहासा नहीं रहने पाता, वैसे ही आशंका, चिन्ता व उद्वेग की

हल्की-सी भावना उसकी मुस्कान के सम्मुख नहीं ठहर सकी, और उसकी आकर्षक अन्तरंगता में विलीन हो गई।

फिर जब ज्यूलिएत् और आबेल भी हमारे पास आ गये, तब बाकी का दिन हमने 'बीच' वृक्षों के झुरमुट मे बेंच पर बैठकर स्विनबर्न के 'समय की विजय' काव्य को जोर-जोर से पढ़ते हुए व्यतीत किया। हम उसका एक-एक पद बारी-बारी से पढ़ते थे। इस प्रकार शाम हो गई।

जब हमारे चलने का समय आया, तो अलीसा ने मेरा चुम्बन लिया। फिर कुछ खिलवाड़ से और कुछ बड़ी बहन की उस भावना से, जो शायद मेरी अविचारशीलता से पैदा हुई थी और जिसे धारण करने का उसे बहुत चाव था, वह बोली—"आओ, अब मुझसे प्रतिज्ञा करो, कि भविष्य में तुम कभी इस प्रकार कल्पनाशील नहीं होगे।"

जैसे ही हम फिर एकान्त में साथ हुए, आबेल ने मुझसे पूछा—"अच्छा, तुम्हारी सगाई हो गई ?"

मैंने ऐसे स्वर में जवाब दिया, जिसके बाद आगे प्रश्नोत्तर की गुंजाइश ही नहीं रहती थी—"प्यारे भाई, अब उसका कोई सवाल ही नहीं है, और यह बहुत अच्छी बात है। मैं अपने जीवन में इतना प्रसन्न कभी नहीं हुआ, जितना आज हूं।"

वह जोर से बोला—"मैं भी कभी इतना प्रसन्न नहीं हुआ था!" फिर अकस्मात् अपनी बांहें मेरे गले में डालकर उसने कहा—"जरोम, मैं तुम्हें एक आश्चर्य की और बहुत असाधारण बात बताने लगा हूं। मैं ज्यूलिएत् के प्रेम में पागल हो गया हूं। मुझे इस बात का सन्देह पिछले साल से था, पर उसके बाद मैंने दुनिया देखी है और मैं तुम्हारी ममेरी बहन से फिर मिले बिना तुम्हें इस विषय में कुछ बताना नहीं चाहता था। अब मेरी ओर से सब कुछ तय है, और वह जीवन-भर के लिए है।

"मैं प्यार करता हूं, मैं किसे प्यार करता हूं, मैं ज्यूलिएत् की पूजा करता हूं।

"बहुत दिनों से मुझे प्रतीत होता था, कि मेरे हृदय में तुम्हारे लिए वह स्नेह है, जो एक साढ़ू के लिए होता है।" फिर हंसकर और मजाक करते हुए उसने मुझे बार-बार गले लगाया। जो गाड़ी हमें पेरिस ले जा रही थी, उसके गद्दों पर वह बच्चे के समान लोट जाता था। उसकी इस सूचना से मैं बहुत स्तब्ध रह गया। आबेल ने यह सूचना जिस ढंग से दी थी, उस में मुझे कुछ साहित्यिक प्रदर्शन अनुभव हुआ था, और यह मुझे कुछ अच्छा नहीं लगा था। पर मेरे लिए इतनी उत्तेजना और इतने प्रेमावेश के सामने बह न जाना असम्भव था। आवेश के दो उफानों के बीच में मैंने पूछा––"अच्छा, क्या तुमने उसके सामने प्रस्ताव रख दिया है ?"

उसने चिल्लाकर कहा––"नहीं, नहीं, हर्गिज नहीं ! मैं कहानी के सुन्दरतम भाग को नष्ट नहीं करा देना चाहता।

"प्रेम के सबसे सुन्दर क्षण वे नहीं हैं, जब तुम कहते हो कि मैं तुम्हें प्यार करता हूं.....

"अच्छा सुनो, तुम मुझे इस कारण बुरा-भला तो नहीं कह सकते, तुम जो स्वयं दीर्घसूत्रता की मूर्ति हो।"

मैंने कुछ-कुछ जलन के साथ पूछा––"अच्छा, फिर भी तुम्हारा क्या विचार है, कि ज्यूलिएत् क्या अपनी ओर से......."

"क्या तुम्हारा ध्यान उस वक्त उसकी घबराहट पर नहीं गया, जब वह मुझसे दुबारा मिली थी और जितना भी समय हमने वहां बिताया, वह कितनी उत्तेजित, लज्जाशील और वाचाल थी ! तुम पूरी तरह अलीसा में डूबे हुए थे और उसने मुझसे कैसे-कैसे सवाल पूछे ! किस तरह उत्सुकता-पूर्वक मेरे शब्दों को सुना ! उसकी समझदारी पिछले साल से बहुत ज्यादा बढ़ गई है। पता नहीं, तुमने यह कैसे समझ लिया, कि उसे पढ़ना अच्छा नहीं लगता। तुम्हारा तो हमेशा यही ख्याल रहा है, कि बस अलीसा ही ऐसी व्यक्ति है, जो कुछ कर सकने के काबिल है ! प्यारे भइया, उसका ज्ञान तो आश्चर्यजनक रूप से गम्भीर है। क्या तुम कल्पना भी कर सकते

हो, कि हम खाना खाने से पहले क्या कुछ करके अपना दिल बहला रहे थे ? हम दान्ते की कैन्जोन नामक कविता का पाठ कर रहे थे। हम बारी-बारी मे एक-एक पंक्ति पढ़ते थे ! यदि मैं कहीं पर गलती कर देता, तो वह मुझे सुधार देती थी। तुम्हें वह पंक्ति याद है––

"वह प्रेम, जो मेरे हृदय में गुनगुनाता है।

"तुमने मुझे यह कभी नहीं बताया, कि उसने इटैलियन भी सीख ली है।"

मैंने बहुत अधिक आश्चर्य से कहा––"यह बात तो मुझे भी मालूम नहीं थी।"

"क्या ? जब हमने कैन्जोन शुरू किया, तब उसने मुझे बताया था, कि तुम्हीं ने उसे इस सबका परिचय दिया है।"

"एक दिन मैं यह उसकी बहन को सुना रहा था, तब उसने सुन लिया होगा। वह उस समय अपने अभ्यास के अनुसार सिलाई का काम करती हुई हमारे पास ही बैठी थी। पर यह सच्ची बात है, कि उसने यह बिलकुल प्रकट नहीं होने दिया, कि हम जो पढ़ रहे हैं, वह उसे समझ में आ रहा है।"

"सचमुच ! तुम्हारी और अलीसा की स्वार्थ-भावना भी आश्चर्य-जनक है। तुम अपने प्यार में इतने डूबे रहते हो, कि उसकी फूल के समान विकसित होती हुई समझदारी और आत्मा पर तुम एक दृष्टिपात् तक भी नहीं कर सकते। मैं आत्मश्लाघा नहीं करता, पर मैं बिलकुल ठीक समय वहां उपस्थित हुआ। नहीं, नहीं, मैं तुमसे नाराज नहीं हूं, जैसा कि तुम समझ ही गये होगे।" उसने मुझे फिर गले से लगाकर कहा––"तुम केवल यह प्रतिज्ञा करो, कि इस विषय में एक भी शब्द अलीसा को नहीं लिखोगे। मैं अपना मामला स्वयं आगे बढ़ाना चाहता हूं। यह निश्चित है, कि ज्यूलिएत् अब मेरी हो गई है, और इतनी काफी मेरी हो गई है, कि यदि मैं अगली छुट्टियों तक उसे न छेड़ूं, तो भी कोई हर्ज नहीं। मेरा

विचार है, कि इस बीच में उसे पत्र भी नहीं लिखूंगा। पर बड़े दिन की छुट्टियां हम लहाव्र में बितायंगे और तब......"

"और तब क्या ?"

"अलीसा को हमारी सगाई के विषय में अकस्मात् ज्ञान हो जायगा। मैं सब कार्य बहुत सौन्दर्य के साथ सम्पन्न करना चाहता हूं। और जानते हो, फिर क्या होगा ? मैं अपने उदाहरण का जोर डालकर तुम्हें अलीसा की स्वीकृति दिलवा दूंगा। तुम इस काम को स्वयं सम्पन्न नहीं कर सकते हो। पर हम उसे प्रेरणा करेंगे, कि हम तुमसे पहले शादी नहीं कर सकते।"

वह एक अनन्त शब्द-प्रवाह में मुझे मज्जन कराता हुआ इसी प्रकार बोलता गया। यह प्रवाह पेरिस स्टेशन पर हमारी गाड़ी के पहुंच जाने पर, और उसके बाद नार्मल स्कूल पहुंच जाने पर भी नहीं रुका। हम स्टेशन से स्कूल तक पैदल गये थे। उतनी रात बीत जाने पर भी वह मुझे मेरे कमरे तक छोड़ने आया। वहां बैठकर हम सुबह तक बातें करते रहे।

आबेल के उत्साह ने हमारे वर्तमान और भविष्य का काम आसान कर दिया। वह अभी से हम दोनों के व्याह का स्वप्न लेने लगा और उसका वर्णन करने लगा। प्रत्येक व्यक्ति को इससे कितना आश्चर्य और आनन्द होगा, वह इसका चित्र खींचने लगा। हमारी कथा कितनी सुन्दर है, हमारी मित्रता कितनी अनुपम है, और मेरे प्रेम-सम्बन्ध को सम्पन्न करने के लिए उसका कर्तव्य कितना अद्‌भुत है, इस कल्पना से उसका जी भर आया। इस आनन्ददायक जोश की गर्मी से बचना कैसा, उलटा मैं भी उसी से परिपूर्ण हो गया, और उसके मनभावने विचारों के जादू के सामने मैंने अपना सिर झुका दिया। हमारे प्रेम के कारण हमारे अन्दर साहस और महत्त्वाकांक्षा बढ़ती गई और हमने निश्चय किया कि स्कूल का कार्यक्रम ज्यों ही समाप्त होगा, त्यों ही पादरी वांतिए द्वारा हम दोनों का विवाह सम्पन्न कराया जायगा और हम चारों अपनी विवाह-यात्राओं पर चल पड़ेंगे। उसके पश्चात् हम दोनों पृथक्-पृथक् किसी अमर साहित्यिक कृति में लग

जायेंगे, जिसमें हमारी पत्नियां हमारी सहायिका होंगी। आबेल को स्कूल के अध्यापक के काम में कोई आकर्षण नहीं था। वह समझता था, कि वह लेखक बनने के लिए उत्पन्न हुआ है, और कुछ सफल नाटक लिखकर वह अपने लिये आवश्यक सम्पदा शीघ्र ही अर्जन कर लेगा। और जहां तक मेरा सवाल है, मुझे ज्ञानार्जन का जितना आकर्षण था, उतना उससे पैदा की जानेवाली सम्पत्ति का नहीं। मेरी स्कीम थी, कि मैं दर्शनों के अध्ययन में अपने को लगा दूंगा और उनका इतिहास तैयार करूंगा। पर अब उन सब आशाओं की स्मृति का क्या लाभ है ?

अगले दिन से हम अपने काम पर जुट गये।

चौथा अध्याय

क्रिसमस की छुट्टियों तक समय इतना कम था, कि मेरा जो विश्वास अलीसा के साथ आखिरी बातचीत से बढ़ गया था, वह क्षण भर के लिए भी चलायमान नहीं हुआ। मैं अपने निश्चय के अनुसार उसको हर रविवार को पत्र लिखा करता था। सप्ताह के बाकी दिन मैं अपने साथी विद्यार्थियों से अलग रहता था और आवेल के अतिरिक्त मुझे और कोई मिलने नहीं आता था। मुझे अलीसा का ध्यान हर वक्त घेरे रहता था। मैं अपनी प्रिय पुस्तकों को व्याख्या-नोटों से ढक देता था, ताकि वह उन्हें पढ़ सके। मुझे स्वयं उन पुस्तकों को पढ़कर जो आनन्द प्राप्त होता था, उसकी अपेक्षा अलीसा को उनको पढ़कर जो आनन्द मिलेगा, उसका मेरी दृष्टि में अधिक महत्त्व था। उसकी चिट्ठियों से मुझे कुछ बेचैनी होती थी। यद्यपि वह मेरे पत्रों का नियम से उत्तर देती थी, फिर भी मुझे ऐसा प्रतीत होता था, कि वह अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति से ऐसा नहीं कर रही है। मुझे लिखने की उसकी उत्सुकता मुझे कार्य करने में उत्साहित करने की चिन्ता के कारण थी। मैं जो विचार-विमर्श या आलोचना करता था, उनका प्रयोजन अपने मनोभावों व विचारों को प्रकट करना होता था। पर मुझे प्रतीत होता था, कि इसके विपरीत अलीसा इन्हीं सबका उपयोग अपने भावों को छिपाने के लिए किया करती थी। कभी-कभी मुझे हैरानी होती थी, कि कहीं उसे इसमें खेल का सा मजा तो नहीं आ रहा है। कोई बात नहीं, मैंने शिकायत न करने का निश्चय कर रखा था, और अपने पत्रों में चिन्ता का कोई चिन्ह प्रकट नहीं होने देता था।

दिसम्बर के अन्त में आवेल और मैं लहात्र के लिए चल पड़े।

मुझे मौसी प्लांतिए के पास ठहरना था। जब मैं पहुंचा, तो वे घर पर

नहीं थीं। पर अभी मैं मुश्किल से अपनी चीजें अपने कमरे में संभालकर रख ही पाया था, कि एक नौकर यह कहने के लिए आया, कि मौसीजी बैठक में मेरा इन्तजार कर रही हैं। उन्होंने पहले मेरे स्वास्थ्य, रहन-सहन और पढ़ाई के विषय में पूछा और तब बिना किसी भूमिका के अपनी प्रेमपूर्ण उत्सुकता को इस प्रकार प्रकट किया—"तुमने, मेरे बच्चे, मुझे अभी तक यही नहीं बताया, कि फांग्युस्मार में ठहरकर तुम्हें कुछ खुशी हुई थी या नहीं? क्या तुम मामले को जरा भी आगे बढ़ा सके थे?"

मेरे पास अपनी मौसी की इस अभिधामयी बात को चुपचाप सुन लेने के सिवा और कोई चारा न था, यद्यपि उन्होंने यह बात सद्भावना से ही कही थी। पर मेरी उन भावनाओं के विषय में, जिनके लिए अधिक से अधिक पवित्र और अधिक से अधिक कोमल शब्द भी मुझे कठोर प्रतीत होते थे, उनका इस ढंग का संक्षिप्त-सा कथन मेरे लिए पीड़ाजनक था। पर उनका स्वर इतना सरल और मधुर था, कि उनकी बात को बुरा मान लेना बेवकूफी थी। फिर भी मैं थोड़ा-सा एतराज किये बिना न रह सका।

"क्या आपने पिछली बसन्त में यह नहीं कहा था, कि अभी सगाई करना समयोचित नहीं होगा?"

वह मेरा एक हाथ पकड़कर और भावावेश के कारण उसे दोनों हाथों में दबाकर बोल पड़ीं—"हां, मुझे याद है। पर शुरू में तो ऐसा कहा ही जाता है। साथ ही अपनी पढ़ाई और सैनिक सेवा के कारण तुम कई वर्षों तक विवाह न कर सकोगे, यह भी मैं जानती हूं। व्यक्तिगत रूप से मैं यह भी पसन्द नहीं करती, कि सगाई और विवाह के बीच का अन्तर बहुत लम्बा हो। युवतियों के लिये यह अन्तर बहुत कष्टदायक होता है, यद्यपि कभी-कभी इसका अनुभव बहुत हृदय-स्पर्शी भी होता है....यह आवश्यक नहीं, कि सगाई की बात को सर्वसाधारण में प्रचारित कर दिया जाय। और हां, इससे घर के सब लोग यह भली भांति जान जाते हैं, कि अब उन्हें अन्य कहीं सम्बन्ध खोजने की आवश्यकता नहीं है। इसके अतिरिक्त, इससे तुम्हें पत्र-व्यवहार

और अन्तरंगता स्थापित करने का भी अधिकार मिल जाता है। और यदि कोई अन्य प्रस्ताव सम्मुख आये, जो असम्भव नहीं है, तो उसके लिए यह संकेत ही काफी है, कि...."उसने यह एक जानकारी की मुस्कराहट से एक अस्पष्ट-सा इशारा करते हुए कहा—"नही, यह सब ठीक नहीं है। अच्छा, तुम जानते हो कि ज्यूलिएत् के लिए एक प्रस्ताव आया है। उसने इन सर्दियों में बहुत अधिक ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। पर वह अभी बहुत छोटी है, और उसने यही जवाब भी दिया है। पर वह नौजवान प्रतीक्षा करने को तैयार है, यद्यपि वह बिलकुल नौजवान भी नहीं है....। संक्षेप में यह एक बहुत अच्छा प्रस्ताव है। वह बहुत विश्वसनीय व्यक्ति है। अच्छा, कल तुम उससे मिल ही लोगे, वह मेरे यहां क्रिसमस-वृक्ष के उत्सव में आ रहा है। तब तुम मुझे बतलाना, कि उसके विषय में तुम्हारा क्या विचार है?"

"मौसी फेलिसी, मुझे भय है, कि उसकी ओर से सब परिश्रम व्यर्थ है, क्योंकि ज्यूलिएत् के मन में और कोई बसा हुआ है।" मैंने आबेल का सीधा जिक्र करने का बहुत अधिक प्रयत्न करते हुए कहा।

मौसी फेलिसी ने एक अविश्वासपूर्ण दृष्टि से अपना सिर एक ओर रखकर प्रश्नात्मक भाव से कहा—"हूं! तुमने तो मुझे आश्चर्य में डाल दिया। उस लड़की ने मुझसे इस विषय में कुछ बताया क्यों नहीं?"

कहीं मेरे मुंह से कुछ और न निकल जाय, इसलिए मैंने अपने होंठ जोर से भींच लिये।

वह आगे बोलीं—"अच्छा, हमें जल्दी ही पता लग जायगा। ज्यूलिएत् पिछले दिनों ज्यादा स्वस्थ भी नहीं रही है। लेकिन इस समय हम उसकी बातें नहीं कर रहे थे। ओह! अलीसा भी बड़ी आकर्षक है। अच्छा बताओ, तुमने स्पष्ट रूप से अपना प्रस्ताव रख दिया है या नहीं?"

यद्यपि मेरा सम्पूर्ण हृदय 'स्पष्ट प्रस्ताव' शब्द के खिलाफ विद्रोह कर रहा था, जो मुझे इतना अनुचित और भद्दा प्रतीत हुआ, पर मैं

इस सीधे प्रश्न का झूठ में जवाब देने के लिए बिलकुल अयोग्य था। मैंने कुछ घबराहट के साथ "हां" कहा, और जब मैं यह कह रहा था, मैंने अनुभव किया कि मेरा मुंह लाल हो गया था।

"और उसने क्या जवाब दिया ?"

मैंने सिर झुका लिया, मुझे इसका उत्तर देना पसन्द नहीं था। मैंने और भी अधिक घबराहट के साथ अपनी अनिच्छा के बावजूद कहा—"उसने सगाई करने से इनकार कर दिया।"

मौसी बोलीं—"उस बालिका ने यह ठीक ही किया। अभी बहुत समय है, ईश्वर जाने......"

मैंने उनको रोकने का व्यर्थ प्रयत्न करते हुए कहा—"अच्छा मौसी ! अब यह बात रहने दो।"

"इसमें मुझे आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि मैं तुम्हारी ममेरी बहन को हमेशा तुमसे ज्यादा समझदार समझती आई हूं......."

पता नहीं उस वक्त मुझे क्या हो गया। निःसन्देह, इस उत्तर-प्रत्युत्तर से मुझ पर बहुत जोर पड़ा, क्योंकि मुझे ऐसा प्रतीत होता था, मानो मेरा हृदय फट जायगा। मैंने अपना मुंह अपनी दयालु मौसी की गोद में छिपा लिया और सिसक-सिसककर रोने लगा।

"नहीं मौसी, नहीं ! तुम नहीं समझतीं। उसने मुझे प्रतीक्षा करने के लिए नहीं कहा......"

उसने बहुत ही मृदु भावना के साथ कोमल स्वर में, अपने हाथ से मेरा सिर ऊपर उठाते हुए कहा—"क्या ? क्या उसने तुम्हें इनकार कर दिया है ?"

मैंने उदासी के साथ सिर हिलाकर कहा—"नही, नहीं, ठीक यह बात भी नहीं है।"

"क्या तुम्हें इस बात का भय है, कि वह अब तुम्हें प्यार नहीं करती ?"

"नहीं, नहीं, मुझे इस बात का भय नही है।"

"बेचारे बच्चे, अगर तुम मुझे सब बात समझाना चाहते हो, तो तुम्हें कुछ स्पष्ट तौर पर बतलाना पड़ेगा।"

अपनी कमजोरी को प्रकट कर देने के कारण मुझे कुछ तो उद्वेग हुआ और कुछ लज्जा आई। मौसी मेरी अनिश्चितता का कारण समझने में निःसन्देह असमर्थ थीं। पर साथ ही, मैं यह भी समझता था, कि यदि अलीसा के इनकार में कोई खास कारण था, तो मौसी फेलिसी उससे मृदुता के साथ बातें करके उसे जान लेंगी और मुझे बता देंगी। शीघ्र ही, वह स्वयं भी उसी नतीजे पर पहुंच गईं।

वह बोलीं—"अलीसा कल सुबह क्रिसमस के पौदे को सजाने में मेरी मदद करने यहां आवेगी। तब मैं समझ लूंगी, कि इस सबकी तह में क्या बात है। मैं तुम्हें दोपहर को खाने के समय तक सब बात बता दूंगी। मुझे निश्चय है, कि तुम भी इस नतीजे पर पहुचोगे, कि डरने की कोई बात नहीं।"

मैं बुकोलां के घर भोजन के लिये गया। ज्यूलिएत् पिछले कुछ दिनों से बीमार थी। वह मुझे सचमुच बदली हुई मालूम पड़ी। उसकी आंखों में कुछ उद्वेग और कुछ कठोरता का भाव विद्यमान था, जिसके कारण वह अपनी बहन से हमेशा से अधिक भिन्न प्रतीत होती थी। उस दिन शाम को मैं उन दोनों में से किसी से भी अकेले में बातचीत नहीं कर सका। न ही मेरी बातें करने की इच्छा थी। मामाजी बहुत थके हुए प्रतीत होते थे, इसलिए मैं भोजन के बाद जल्दी ही चला गया।

क्रिसमस-वृक्ष के अवसर पर मौसी प्लांतिए हर साल एक भोज देती थीं, जिसमें बहुत-से बच्चे, रिश्तेदार और मित्र शामिल होते थे। क्रिसमस-वृक्ष अन्दर की ओर एक बड़े हाल में स्थापित किया गया था। इस हाल से एक दरवाजा बैठक में खुलता था, और एक शीशे का दरवाजा उस फूल-घर में, जहां कि शीत काल में फूल व पौदे रखे जाते थे। खाने-पीने की मेज

इसी कमरे में सजाई गई थी। क्रिसमस-वृक्ष जिस हाल में स्थापित था, उससे एक सीढ़ी ऊपर की मंजिल पर भी जाती थी। पेड़ की सजावट अभी पूरी नहीं हुई थी। भोजवाले दिन की सुबह, यानी मेरे पहुंचने के अगले दिन, जैसा कि मौसीजी ने मुझे बताया, अलीसा सुबह बहुत जल्दी आ गई और पेड़ की डालों पर सजावट का सामान—बत्तियां, फल, मिठाइयां और खिलौने लटकाने में मदद देने लगी। मुझे उसके साथ यह सब कुछ करवाने में बड़ा आनन्द आता, पर मैं मौसी फेलिसी को उसके साथ बात करने का मौका देना चाहता था। अत: उससे मिले बिना ही, मैं बाहर चला गया और सुबह का सारा समय मैंने अपनी चिन्ता को दूर करने में व्यतीत किया।

मेरी ज्यूलिएत् से मिलने की इच्छा थी, अत: मैं पहले बुकोलां के घर गया। वहां जाकर मालूम हुआ, कि आबेल मुझसे पहले वहां आया हुआ था। मैं नहीं चाहता था, कि उनकी इस महत्त्वपूर्ण बातचीत में कोई बाधा उपस्थित हो। अत: मैं वहां से एकदम लौट आया और सड़कों और गलियों में दोपहर के भोजन के समय तक घूमता रहा। मौसी मुझे देखती ही फट पड़ीं—"इतना बड़ा बेवकूफ! तुम बिना कारण अपने को इतना दु:खी करते हो, कि तुम्हें सचमुच माफ नहीं किया जा सकता। जो कुछ तुमने मुझसे कल सुबह कहा था, उसमें सचाई का लवलेश भी नहीं है। मैंने मामले तक पहुंचने में देर नहीं की। कुमारी ऐशबर्टन हमारी सहायता करते-करते थक गई थीं। मैंने उन्हें विश्राम करने के लिए भेज दिया। ज्योंही मैं अलीसा के साथ अकेली हुई, मैंने उससे साफ-साफ पूछा, कि उसने पिछली गर्मियों में तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार क्यों नहीं किया? क्या तुम समझते हो, कि उसे यह बात बुरी लगी? वह क्षण भर के लिए भी नहीं हिचकिचाई, और बिलकुल शान्ति के साथ बोली, कि मैं अपनी बहन से पहले व्याह नहीं करना चाहती। यदि तुम उससे स्पष्ट तौर पर प्रश्न करते, तो वह तुम्हें भी यही जवाब देती। एक सही बात के पीछे तुमने खूब गड़बड़ मचाई है? क्यों ठीक है

न ? देखो, मेरे बच्चे, स्पष्टवादिता के बराबर कोई चीज नहीं है। बेचारी अलीसा ! अपने पिता के विषय में भी उसने मुझसे बातचीत की। वह उन्हें अकेला नहीं छोड़ सकती। ओह ! हम बड़ी देर तक बातें करते रहे। वह प्यारी बच्ची बहुत समझदार है। वह कह रही थी, कि अभी उसे यह पूरी तरह समझ में नहीं आया, कि वह तुम्हारे लिए उपयुक्त है। उसे भय है, कि वह आयु में बहुत बड़ी है और वह समझती है, कि ज्यूलिएत् की आयु की कोई...........।"

मौसीजी बोलती गईं, पर अब मैं उनकी बात नहीं सुन रहा था, मुझे सिर्फ एक ही बात से मतलब था---अलीसा अपनी बहन से पहले विवाह करने से इनकार करती है। पर आबेल तो वहां मौजूद था। शायद वह ठीक ही कहता था। वह प्रवंचनापूर्ण आबेल ! वह सच कहता था, कि हम दोनों के विवाह की गुत्थी को वह एक साथ ही सुलझा देगा।

यह रहस्योद्घाटन यद्यपि बहुत सरल था, फिर भी उससे मेरे मन में उत्तेजना हुई। पर मैंने इस बात को मौसी से छिपाया और उसके सामने अपनी प्रसन्नता ही प्रकट की। इसको उसने स्वाभाविक समझा और वह इस बात से बहुत सन्तुष्ट हुई, कि मुझे उसी के कारण यह प्रसन्नता प्राप्त हुई। पर खाना खाते ही मैंने कोई बहाना बनाकर उससे विदा ले ली और आबेल को ढूंढ़ने चल पड़ा।

जैसे ही मैंने अपना सुसमाचार उसे सुनाया, वह मुझे आलिंगन करके बोला--"मैंने तुहें क्या कहा था ? मेरे दोस्त, आज सुबह ज्यूलिएत् से जो मेरी बातचीत हुई, उससे मैं कह सकता हूं, कि यह मामला प्रायः तय हो गया है, यद्यपि हमने तुम्हारे विषय को छोड़कर शायद ही कोई और बात की हो। पर वह थकी हुई और विक्षुब्ध सी प्रतीत होती थी और मुझे भय था, कि दूर तक आगे बात बढ़ाने पर वह कहीं उत्तेजित न हो जाय, और देर तक ठहरने से कहीं उसकी उत्तेजना अधिक न बढ़ जाय। पर अब तुम्हारी बातचीत के बाद मेरे मन में कोई संकोच नहीं रह गया। मेरे भाई, यह

मैंने छड़ी उठाई और यह टोपी, और मैं तो चला। तुम वुकोलां के घर तक मेरे साथ चलो। तुम पीछे से मुझे थामे रखना, मैं इस समय पतंग से भी हल्का हूं, डर है कहीं उड़ न जाऊं। जब ज्यूलिएत् को पता चलेगा, कि सिर्फ उसी के कारण उसकी बहन तुम्हें इनकार कर रही है—तब उसी वक्त मैं अपना प्रस्ताव रख दूंगा.....अरे भाई, मुझे तो अभी से दिखाई दे रहा है कि आज शाम को मेरे पिता क्रिसमस-वृक्ष के पास खड़े हैं, उनका हाथ उनके चरणों पर झुके हुए दो दम्पतियों पर फैला हुआ है। वे भगवान् को धन्यवाद दे रहे हैं, और आनन्दाश्रु बहा रहे हैं। कुमारी ऐशबर्टन एक लम्बी सास खींच कर एक ओर को चली जा रही हैं। मौसी प्लांतिए अपने कपड़ों में कसमसा रही हैं, और वह प्रज्वलित पेड़ बाईबल में वर्णित पहाड़ के समान भगवत्प्रशंसा के गीत गा रहा है, और तालियां बजा रहा है।"

क्रिसमस-वृक्ष शाम के समय प्रकाशित होना था और बच्चों, रिश्ते-दारों और दोस्तों को भी तभी इकट्ठा होना था। मुझे समझ में नहीं आ रहा था, तब तक मैं क्या करूं? चिन्ता और अधीरता के मारे मेरा बुरा हाल था। अब आबेल से विदा होकर मैं समुद्र के किनारे सांत-आद्रेस की पहाड़ी पर दूर तक भ्रमण के लिए निकल गया, जिससे प्रतीक्षा के समय का अच्छा सदुपयोग हो जाय। वहां मैं रास्ता भूल गया, पर होशियारी के साथ घर वापस लौट गया। जब लौटा, तो मौसी प्लांतिए का भोज पूरी तरह जोरों पर था।

जैसे ही मैं हाल में घुसा, मेरी दृष्टि अलीसा पर पड़ी। वह मेरी इन्तजार में मालूम पड़ती थी और एकदम मेरी ओर बढ़ आई। उसने अपने गले में एक पुराना क्रास पहन रक्खा था, जो ब्लाउज के खुले भाग में से दिखाई पड़ता था। यह क्रास मैंने उसे अपनी मां की स्मृति में दिया था, पर उसे पहने हुए मैंने उसे पहले कभी नहीं देखा था। उसका मुंह सूखा हुआ था। उसके मुख पर कष्ट का चिन्ह देखकर मेरे हृदय में चोट पहुंची। उसने जल्दी-

जल्दी एक ही सांस में मुझसे पूछा—"तुम्हें इतनी देरी क्यों हो गई ? मैं तुमसे बात करना चाहती थी ।"

"मैं समुद्र के किनारे पहाड़ी पर रास्ता भूल गया था......पर क्या तुम्हारी तबियत खराब है.....क्यों अलीसा ! क्या बात है ?"

वह क्षणभर मेरे सामने चुपचाप खड़ी रही, मानो किसी ने उसकी वाग्शक्ति छीन ली हो। उसके होंठ कांप रहे थे। मुझे इतना डर लगा, कि मैं उससे कोई प्रश्न भी नहीं कर सका। उसने अपना हाथ मेरे गले पर रख दिया, मानो मेरा मुंह पास खींचना चाहती हो। मैंने समझ लिया, कि वह कुछ कहना चाहती है। पर उसी समय कुछ मेहमान अन्दर आ गये, निराश होकर उसने अपना हाथ नीचे कर लिया.......

वह धीरे से बोली—"अब समय नहीं रहा है ।"

मेरी आंखें आंसुओं से भर आईं थीं। मेरी प्रश्नात्मक दृष्टि के जवाब में उसने कहा—मानो ऐसा प्रपंचनामय उत्तर मुझे शान्त करने के लिए पर्याप्त होगा—"नहीं....धीरज धरो। मुझे सिर्फ सिरदर्द है, बच्चे इतना शोर मचा रहे हैं....मैं भागकर यहां चली आई......अब बच्चों के पास लौट जाने का समय हो गया।"

वह एकदम मेरे पास से चली गई। इसी समय कुछ लोग अन्दर आए, और वे मेरे और उसके बीच में आ गये। मैंने सोचा था, बैठक में उसके पास पहुंच जाऊंगा। वह मुझे कमरे के दूसरे सिरे पर दिखाई दी। वह बच्चों की भीड़ से घिरी हुई थी और उन्हें खेल खिला रही थी। उसके और मेरे बीच अनेकों व्यक्ति थे, जिनसे मैं परिचित था और जिनके पास होकर यदि मैं जाता, तो रोक लिये जाने का भय था। मैं उस समय अपने को शिष्टाचार या बातचीत के अयोग्य अनुभव करता था, शायद मैं दीवार के साथ किनारे-किनारे चला.....मैंने कोशिश की। जब मैं बगीचे में को खुलनेवाले शीशे के बड़े दरवाजे के सामने से गुजर रहा था, किसी ने मेरी

बांह पकड़ ली। परदे के पीछे, खिड़की की आड़ में आधी छिपी हुई ज्यूलिएत् वहां खड़ी थी।

वह जल्दी से बोली—"फूलघर में चलो। मैं तुमसे कुछ बात करना चाहती हूं। तुम अकेले चले जाओ, मैं तुम्हें अभी वहां मिल जाऊंगी।" और क्षण भर के लिए दरवाजा जरा-सा खोलकर वह बगीचे में घुस गई। क्या बात हो गई? मेरी इच्छा हुई, किसी तरह आबेल्ल मिल जाय। उसने क्या कह दिया था? उसने क्या कर दिया था? हॉल में लौटकर मैं फूलघर की ओर चला, जहां ज्यूलिएत् मेरा इन्तजार कर रही थी।

उसका चेहरा लाल हो रहा था, भौंहें चढ़ी हुई थीं, मुंह पर कठोरता और कष्ट का भाव था, आंखें ऐसी चमक रही थीं, मानो बुखार चढ़ आया हो। आवाज भी भारी और तीखी थी। किसी आवेश के कारण वह उत्तेजित थी। मैं बहुत विक्षुब्ध हुआ, साथ ही उसके सौन्दर्य को देखकर अत्यन्त आश्चर्यित भी। हम दोनों के सिवा वहां कोई और न था। वह एकदम पूछ बैठी—"क्या अलीसा ने तुमसे बात की है?"

"मुश्किल से दो शब्द कहे होंगे, मैं बहुत देरी से आया था।"

"यह तो तुम्हें पता ही होगा, वह चाहती है, कि पहले मेरा ब्याह हो जाय?"

"हां।"

वह मेरी ओर घूरकर देख रही थी......

"क्या तुम्हें मालूम है, वह किससे मेरा ब्याह करवाना चाहती है?"

मैंने जवाब नहीं दिया।

वह सुबकती हुई बोली—"तुमसे।"

"क्यों! यह तो पागलपन है!"

"हाँ! यही बात है!" उसके स्वर में विजय और निराशा दोनों का भाव था। वह सीधी खड़ी हो गई, अथवा यूं कहना चाहिए, कि उसने अपने को पिछली तरफ को झटका दिया।

बगीचे का दरवाजा खोलते हुए, वह अस्पष्ट तौर पर बोली—"अब मैं समझ गई, मेरे लिए कौन-सा रास्ता बच गया है।" और जोर से दरवाजा बन्द करके चली गई। मेरा हृदय और दिमाग दोनों चक्कर खाने लगे। ऐसा मालूम पड़ता था, जैसे मेरी कनपटियों पर खून जोर-जोर से धड़-धड़ कर रहा हो। इस अव्यवस्थित दशा में सिर्फ एक ही विचार मेरे सामने था, किसी तरह आबेल मिल जाय। वह शायद दोनों बहनों के विचित्र व्यवहार की व्याख्या कर सके। पर बैठक में जाने की मुझे हिम्मत नहीं हुई। मैं समझता था, वहां सब मुझे उत्तेजित अवस्था में देख लेंगे। मैं बाहर निकला। बगीचे की बर्फीली हवा ने मुझे शान्ति पहुंचाई, अतः वहां कुछ देर ठहर गया। शाम होनी प्रारम्भ हो गई थी, और समुद्र से कुहासा उठकर शहर पर छा रहा था। पेड़ों पर एक भी पत्ती शेष नहीं रह गई थी। पृथ्वी और आकाश में भयानक निर्जनता व्याप्त प्रतीत हो रही थी। गाते हुए स्वरों की ध्वनि हवा में उठ रही थी, निःसन्देह यह क्रिसमस-वृक्ष के चारों ओर एकत्रित बच्चों की संगीत-ध्वनि थी। मैं सामने से अन्दर घुसा। बैठक और अन्दर के हॉल कमरे के दरवाजे खुले हुए थे। बैठक अब प्रायः निर्जन थी। वहां पियानो की आड़ में बैठी हुई मौसी दिखलाई पड़ीं। वे ज्यूलिएत् से बातें कर रही थीं। अन्दर के हॉल कमरे में मेहमान प्रज्वलित वृक्ष के चारों ओर एकत्र थे। बच्चों ने अपना संगीत समाप्त कर दिया था। अब प्रायः मौन था और पादरी वांतिए वृक्ष के सामने खड़े होकर एक उपदेश प्रारम्भ कर रहे थे। उनके अपने शब्दों में 'अच्छा बीज बोने' का कोई मौका वे चूकते नहीं थे। रोशनी और गर्मी से मुझे बहुत बेचैनी हो रही थी। मैं बाहर निकल जाना चाहता था। दरवाजे के बाहर मुझे आबेल दिखाई दिया। इसमें सन्देह नहीं, कि वह वहां कुछ देर से खड़ा था। उसने मेरी ओर कठोर दृष्टि से देखा। जब हमारी आंखें चार हुईं, तो उसने अपने कन्धे सिकोड़ लिये। मैं उसकी ओर आगे बढ़ा।

वह धीमे से बोला—"बेवकूफ !" और फिर यकायक "चलो, बाहर चलें, मैं इस उपदेश से ऊब गया हूं।"

और जैसे ही हम बाहर निकले, वह फिर बोला—"तुम बेवकूफ हो।"

मैं कुछ बोले बिना चिन्ता के साथ उसकी ओर देखने लगा।

"अरे बेवकूफ ! वह तो तुम्हें प्यार करती है। क्या तुम मुझे यह बात पहले नहीं बता सकते थे ?"

मैं स्तब्ध रह गया। मैंने समझने की कोशिश भी नहीं की। "नहीं, सचमुच नहीं ! यह बात तुम्हें स्वयं भी नहीं दिखाई पड़ी थी।" उसने मेरी बांह पकड़ ली और मुझे जोर से झकझोर दिया। वह अपने दांत पीस रहा था, और उसकी आवाज कांप रही थी। उसके मुंह से फुफकार निकल रही थी। क्षण भर चुप रहकर मैंने भी कांपती आवाज में कहा—"आबेल ! मेरी प्रार्थना है, इतना अधिक नाराज न होओ। यह बताने की कोशिश करो, कि हुआ क्या है ? मैं कुछ भी नहीं जानता।" इस समय वह तेजी से इधर-उधर फिरता हुआ मुझे अपने साथ घसीट रहा था।

अकस्मात् वह खड़ा हो गया और सड़क के लैम्प की धुंधली रोशनी में मेरा मुह ध्यान से देखने लगा। फिर जल्दी से मुझे अपने पास खींचकर अपना सिर उसने मेरे कन्धे पर रख दिया, और सिसकते हुए कहा—"मुझे माफ करो, मैं भी नासमझ हूं, मेरे भाई, मैं भी तुमसे ज्यादा नहीं समझ सका था।"

आंसुओं से उसे कुछ शान्ति मिली, उसने अपना सिर ऊपर उठाया। और फिर आगे चलते हुए कहना शुरू किया—"जो हो गया, सो हो गया। अब उस पर सोचने से क्या लाभ ? जैसा मैंने तुम्हें बताया था, मैंने सुबह ज्यूलिएत् से बात की थी। वह असाधारण रूप से सुन्दर और सजीव प्रतीत होती थी। मैंने सोचा, कि उसकी यह दशा मेरे कारण थी, पर वास्तव में इसका कारण यह था, कि हम तुम्हारी बातें कर रहे थे।"

"क्या यह बात तुमने तब नहीं समझी थी ?"

"नहीं, ठीक-ठीक नहीं, पर अब तो छोटी से छोटी बात भी मुझे स्पष्ट हो गई है ।"

"क्या तुम्हें निश्चय है, कि तुम गलती नहीं कर रहे हो ?"

"गलती ! भैया, तुम निश्चय ही अन्धे हो, जो तुम्हें यह भी नहीं दिखलाई पड़ता, कि वह तुम्हें प्यार करती है ।"

"फिर अलीसा........"

"अलीसा अपने को बलिदान कर रही है । उसे अपनी बहन का रहस्य मालूम पड़ गया है, और वह तुम्हें उसे दे देना चाहती है । सचमुच, भाई, यह समझना बहुत कठिन नहीं है । मैं फिर ज्यूलिएत् से बात करना चाहता था । मेरे पहले शब्दों को सुनते ही, जैसे ही उसे मेरी बात समझ आई, वह जिस सोफा पर बैठी थी, उससे उठ खड़ी हुई और बार-बार कहने लगी—'मुझे इसका विश्वास था ।' यह बात उसने ऐसे स्वर में कही, जिसे वही कह सकता है, जिसे सचमुच विश्वास हो ।"

"भई ! इस विषय में मजाक मत करो ।"

"क्यों नहीं ? मुझे तो यह सब मामला बहुत हास्यप्रद मालूम पड़ता है । वह दौड़ी हुई अपनी बहन के कमरे में गई । मैंने सुना, वे दोनों इतनी जोर-जोर से गुस्से में बातें कर रही थीं, कि मुझे तो डर लगा । मुझे फिर ज्यूलिएत् से मिलने की आशा थी । पर क्षण भर बाद अलीसा बाहर निकली । उसने टोपी पहन रखी थी, वह मुझे देखकर हिचकिचाई, और बाहर जाते-जाते जल्दी से कह बैठी—"प्रणाम" । बस यही बात हुई ।"

"क्या तुम्हें फिर ज्यूलिएत् नहीं मिली ?"

आबेल को कुछ संकोच हुआ, वह फिर बोला—"हां, अलीसा के जाने के बाद, मैंने कमरे का दरवाजा धक्का देकर खोला । ज्यूलिएत् वहां चिमनी के सामने गतिशून्य होकर खड़ी थी । उसकी कोहनियां चिमनी पर टिकी थीं और उसकी ठोड़ी हथेलियों पर । वह शीशे में अपना

प्रतिबिम्ब देख रही थी। जब उसने मेरे आने की आवाज सुनी, तो वह मेरी ओर मुड़ी नहीं, पर अपना पैर पटककर बहुत जोर से कर्कश स्वर में बोली—"मुझे अकेली छोड़ दो।" मैं कुछ-कहे-सुन बिना बाहर चला आया। बस यही बात हुई।"

"और अब ?"

"तुम्हें यह सब बातें सुनाकर मेरा दिल हल्का हुआ.....और अब ? अच्छा है, तुम यदि कोशिश करके ज्यूलिएत् के प्रेम का कोई इलाज कर दो। नहीं तो—या तो मैं अलीसा के स्वभाव को समझा ही नहीं हूं, यदि समझा हूं तो—वह उस इलाज के बिना तुम्हारे पास नहीं आयगी।"

हम कुछ देर तक चुपचाप आगे चलते गये। आखिर वह बोला—"चलो, वापस चलें। अब तक मेहमान चले गये होंगे और पिताजी मेरा इन्तजार करते होंगे।"

हम अन्दर गये। बैठक वास्तव में खाली पड़ी थी। हॉल में क्रिसमस-वृक्ष की शाखाएँ नंगी कर दी गई थीं और उसकी बत्तियां प्रायः बुझा दी गई थीं। अब उसके चारों ओर थे केवल मौसीजी, उनके दो लड़के, मामा बुकोलां, कुमारी ऐशबर्टन, पादरी, मेरी ममेरी बहनें और एक बिलकुल तमाशा-सा दिखाई देनेवाला व्यक्ति। मैंने देखा था, कि वह मौसी से बड़ी देर तक बातें करता रहा था। तभी मैंने पहचाना, कि यही वह महाशय हैं, जिनके विषय में ज्यूलिएत् ने मुझे बताया था। वह हम सबसे ज्यादा लम्बा और ज्यादा मजबूत था। रंग भी उसका अधिक गहरा था। उसका सिर प्रायः गंजा था। वह हमसे एक भिन्न श्रेणी का, भिन्न दुनिया का और भिन्न जाति का आदमी था। वह स्वयं भी यह अनुभव करता प्रतीत होता था, कि वह हमारे बीच एक अजनबी-सा है। उसकी मूंछें बहुत लम्बी और मोटी थीं; और उसकी दाढ़ी इम्पीरियल फैशन से कटी हुई थी। वह कुछ घबड़ाहट के साथ अपनी मूंछें मरोड़ रहा था और दाढ़ी पर हाथ फेर रहा था।

प्रवेश-द्वार खुल पड़ा था और वहां रोशनी नहीं थी। हमने चुपके से अन्दर प्रवेश किया था, अतः किसी को हमारे आने का ज्ञान नहीं हुआ। अमंगल की एक भयंकर आशंका ने मुझे घेर लिया। आबेल मेरी बांह पकड़ कर बोला––"ठहरो।"

तब हमने देखा, कि उस अपरिचित आदमी ने ज्यूलिएत् को पास खींचकर उसका हाथ पकड़ लिया। ज्यूलिएत् ने उसमें कोई बाधा न डाली, और न ही उसने उस आदमी की ओर देखा ही। मेरे हृदय में काली रात्रि-सी छा गई।

मैंने धीरे से पूछा–"आबेल ! यह क्या हो रहा है ?" जैसे कि मुझे अभी तक कुछ समझ में न आया हो, या मुझे यह आशा थी, कि मैं जो कुछ समझ रहा हूं, वह ठीक नहीं है।

उसने फुफकारती हुई आवाज में कहा–"भगवान् की कसम, छोटी तो खूब ऊंची बोली बोल रही है। वह अपनी बहन से पीछे नहीं रहना चाहती। स्वर्ग से देवगण उसका समर्थन कर रहे हैं।"

कुमारी ऐशवर्टन और मौसीजी ने ज्यूलिएत् को घेर लिया था। अब मामाजी उसे गले से लगाने के लिए आगे बढ़े। पादरी वांतिए भी पास खिसक आये। मैंने एक कदम आगे बढ़ाया। अलीसा की निगाह मुझ पर पड़ गई, वह भावोद्वेग से कांपती हुई मेरी ओर दौड़ पड़ी।

"हाय, जरोम, यह सब कुछ नहीं होना चाहिए। वह उसे प्यार नहीं करती है। क्यों, यह बात तो उसने मुझे सुबह ही कही थी। जरोम, इसे रोकने की कोशिश करो ! हाय, उस बेचारी का क्या होगा ?" एक आकुल अभियाचना के साथ वह मेरे कन्धों पर टिक गई। उसकी यातना कम करने के लिए मैं अपना जीवन भी दे सकता था।

अकस्मात् क्रिसमस-वृक्ष के पास से चिल्लाने और बौखलाहट की आवाज आई। हम उधर को झपटे। ज्यूलिएत् बेहोश होकर मौसी की बांहों में गिर पड़ी थी। वे सब उसके चारों ओर इकट्ठे होकर उस पर झुके हुए

थे। इस कारण वह मुझे मुश्किल से दिखाई पड़ रही थी। उसका चेहरा भयंकर तौर पर पीला पड़ गया था। उसके बाल खुल गये थे, और ऐसा प्रतीत होता था, मानो उनके बोझ से उसका मुंह पीछे को लटक गया हो। जिस प्रकार उसका शरीर ऐंठ रहा था, उससे मालूम पड़ता था, कि वह मामूली बेहोशी नहीं थी।

मामा बुकोलां घबरा रहे थे, और पादरी वांतिए ऊपर स्वर्ग की ओर अंगुली उठाकर उन्हें समझा रहे थे। मौसीजी उनको धीरज बंधाने के लिए ऊंचे स्वर में बोलीं—"नहीं, नहीं, यह कुछ नहीं है ! सिर्फ भावोद्रेक का प्रभाव है। यह दौरा स्नायुओं की कमजोरी के कारण है। महाशय तिसिए, मेरी मदद करो, तुम इतने मजबूत हो। हम उसे उठाकर ऊपर मेरे कमरे में ले जायंगे, मेरे पलंग पर, मेरे पलंग पर।" तब वह अपने बड़े लड़के की ओर झुकी, उसके कान में कुछ कहा और मैंने उसे एकदम जाते देखा। निःसन्देह वह डाक्टर को बुलाने गया था।

मेरी मौसी और अपरिचित पुरुष ज्यूलिएत् के कन्धों को सहारा दे रहे थे, और वह उनकी बांहों में आधी लेटी पड़ी थी। अलीसा ने अपनी बहन के पैर उठाये और उन्हें कोमलता के साथ छाती से लगा लिया। आबेल ने उसका सिर पकड़ा, नहीं तो वह पीछे की ओर गिर पड़ता और मैंने देखा कि वह नीचे झुककर, उसके लटकते हुए बालों को इकट्ठा करके उन पर चुम्बनों की वर्षा कर रहा था।

मैं कमरे के दरवाजे के बाहर रुक गया। ज्यूलिएत् को पलंग पर लिटा दिया गया। अलीसा ने महाशय तिसिए और आबेल से कुछ बात कही, जिसे मैं नहीं सुन सका। वह उन्हें दरवाजे तक पहुंचाने आई और हम सबसे चले जाने की प्रार्थना की, जिससे उसकी बहन शान्ति से आराम कर सके। वह उसके पास अकेली रहना चाहती थी और चाहती थी कि मौसी प्लांतिए के अतिरिक्त वहां और कोई न रहे। आबेल ने मेरी बांह पकड़ी और मुझे बाहर रात्रि के अन्धकार में खींच ले गया और हम बड़ी देर तक निरुद्देश्य, निरुत्साह और निर्विकार चलते रहे।

पांचवां अध्याय

ऐसा प्रतीत होता था, कि प्रेम के सिवा मेरे जीवन का और कोई प्रयोजन नहीं है। मैंने उसी को अपना सहारा बना लिया था। मैंने निश्चय कर लिया था, कि मैं किसी बात की आशा नहीं करूंगा, किसी अन्य बात की इच्छा नहीं करूंगा। जो कुछ अलीसा स्वयं मुझे प्रदान करेगी, वही मेरे लिए पर्याप्त होगा।

अगले दिन सुबह जब मैं उससे मिलने जाने के लिए तैयार हो रहा था, मौसीजी ने मुझे निम्नलिखित पत्र पकड़ाया, जो उन्हें अभी मिला था।

"......... ज्यूलिएत् की अत्यधिक बेचैनी डाक्टरी दवा देने के बावजूद भी सुबह तक कम नहीं हुई। मैं जरोम से प्रार्थना करती हूं, कि वे कुछ दिनों तक यहां न आयें और हमसे न मिलें। ज्यूलिएत् उनकी पदचाप या आवाज पहचान सकती है, और उसे शान्ति की अत्यधिक आवश्यकता है।

"शायद ज्यूलिएत् की इस हालत के कारण मुझे भी यहीं रहना पड़ेगा। यदि जरोम के जाने से पहले मैं उनसे न मिल सकूं। तो मौसीजी, कृपा कर उन्हें कह दीजिएगा, मैं उन्हें पत्र लिखूंगी ....।"

बुकोलां के घर प्रवेश करने का मुझे निषेध हो गया था। मौसीजी व अन्य सबको वहां जाने की स्वतन्त्रता थी, और मौसीजी तो वहां उसी दिन जा ही रही थीं। मेरे जाने से वहां शोर होगा। कितना निर्बल बहाना था। कोई बात नहीं।

मैंने कहा—"बहुत अच्छा, मैं नहीं जाऊंगा।" मैं अलीसा से एकदम

नहीं मिला, इसका मुझ पर बहुत अधिक जोर पड़ा। फिर भी उससे मिलते हुए मुझे डर भी लगता था। मुझे भय था, कि कहीं अपनी बहन की दशा के लिए वह मुझे जिम्मेदार न ठहराये। उसको चिन्तित दशा में देखने की अपेक्षा उससे न मिलने को सहन कर लेना अधिक आसान था।

मैंने निश्चय किया, कि किसी तरह आबेल को तो अवश्य मिलूं।

जब मैं उसके दरवाजे पर पहुंचा, तो नौकरानी ने मुझे एक परची पकड़ाई।

"मैं ये शब्द तुम्हें इसलिए लिख रहा हूं, जिससे तुम चिन्तित न हो। लहाव्र में ज्यूलिएत् के इतने पास रहने की कल्पना मेरे लिए असह्य थी। मैं रात तुमसे विदा होते ही सौथम्पटन के लिए जहाज पर चढ़ गया। मैं छुट्टियों के बाकी दिन लण्डन में स......के साथ बिताऊंगा। अब स्कूल में हम फिर मिलेंगे।"

सारी मानवीय सहायता एक साथ और एकदम मुझे मिलनी बन्द हो गई। मैंने उस निवास को लम्बा नहीं करना चाहा, जिससे मुझे केवल कष्ट ही पहुंचना और सत्र प्रारम्भ होने के पहले ही मैं पेरिस चला आया। मैंने अपनी दृष्टि भगवान् की ओर फेरी "उसकी ओर, जिससे असली सान्त्वना मिलती है, और जो सब अच्छी वस्तुओं का दाता है।" मैंने अपनी वेदना उसके सामने निवेदन की। मैंने सोचा, कि अलीसा भी भगवान् में शरण-प्राप्त कर रही थी। मुझे इस विचार से प्रोत्साहन मिला, कि वह भी प्रार्थना में लीन है और इस कारण मेरी प्रार्थना और अधिक उत्कृष्ट हो गई।

बहुत समय व्यतीत हो गया। मैं स्वाध्याय और प्रार्थना में लगा रहता था। इस बीच में मेरे पत्र अलीसा के पास जाते रहे और उसके मेरे पास आते रहे। इसके सिवा और कोई घटना नहीं हुई। मैंने उसके सब पत्र संभाल कर रख लिये हैं, और अब आगे से यदि मेरे संस्मरणों में कहीं कोई गड़बड़ पैदा होगी, तो उसे मैं उनसे ठीक कर लूंगा।

मुझे लहाव्र के समाचार मौसीजी द्वारा, शुरू में केवल उन्हीं द्वारा

मिले। उन्हीं से मालूम पड़ा, कि ज्यूलिएत् की हालत शुरू में कुछ दिनों बहुत चिन्ताजनक रही। मेरे आने के बारह दिन बाद आखिरकार यह पत्र मुझे अलीसा के पास से मिला—

"मेरे प्यारे जरोम, माफ करना, इससे पहले मैं तुम्हें पत्र नहीं लिख सकी। हमारी बेचारी ज्यूलिएत् की अवस्था के कारण मुझे बहुत कम समय मिला। जबसे तुम गये हो, मैंने मुश्किल से उसे कभी छोड़ा होगा। मैंने मौसीजी से प्रार्थना की थी, कि वे हमारे समाचार तुम्हें भेजती रहें और मेरा विचार है, कि उन्होंने ऐसा किया भी है। इस प्रकार तुम्हें मालूम ही है, कि ज्यूलिएत् पिछले तीन दिनों से अच्छी है। मैं इसके लिए भगवान् का धन्यवाद देती हूं। पर मन अभी पूरी तरह प्रसन्न नहीं है।"

राबेअर के सम्बन्ध में मैंने अभी तक बहुत कम लिखा है। उससे भी मुझे अपनी बहनों के समाचार ज्ञात हुए, जब कि वह मेरे आने के कुछ दिन बाद पेरिस लौटा। उन्हीं के कारण मैं उसके साथ उससे अधिक समय व्यतीत करता था, जितना कि स्वाभाविक तौर पर मुझे पसन्द था। वह कृषि-स्कूल में पढ़ता था। जब कभी वह खाली होता, मैं उसे साथ ले जाता और उसके दिल-बहलाव की बहुत कोशिश करता।

जो बात मैं अलीसा या मौसीजी से पूछने की हिम्मत नहीं कर सकता था, वह मुझे उससे पता लगी।

एदुआर तिसिए ज्यूलिएत् के स्वास्थ्य के विषय में नियमपूर्वक पूछने आते थे, पर जब तक राबेअर लहाव्र से चला, वह उससे कभी नहीं मिली थी। मुझे यह भी मालूम पड़ा, कि ज्यूलिएत् ने अपनी बहन के प्रति हठपूर्ण मौन धारण कर रखा था, जिसे कोई भी बात नहीं तोड़ सकी थी।

कुछ दिनों बाद मुझे मौसी के पत्र से पता लगा, कि ज्यूलिएत् इस बात के लिये हठ करती थी, कि उसकी सगाई की बात सबको बता दी जाय। दूसरी ओर बगैर किसी के कहे-सुने मैं यह भी अनुभव करता था, कि

अलीसा को आशा थी, कि यह सगाई शीघ्र ही टूट जायगी। ज्यूलिएत् के इस संकल्प के सामने परामर्श, आज्ञा, प्रार्थना सब बेकार थे। इस संकल्प ने उसके मस्तिष्क को जकड़ रखा था, उसकी आंखों पर एक पट्टी सी बांध रखी थी। उसका यह संकल्प उसके मौन द्वारा भली भांति आच्छादित था।

समय बीतता गया। मुझे अलीसा के पास से बहुत ही उड़ते-उड़ते पत्रों के सिवा और कुछ नहीं मिलता था और मुझे भी समझ में नहीं आता था, कि मैं उसे क्या लिखूं। सर्दियों के घने कुहासे ने मुझे चारों ओर से घेर रक्खा था। अपने हृदय से अन्धकार और शीत को दूर करने में मुझे अपने अध्ययन के प्रदीप से और प्रेम तथा विश्वास के सारे आवेग से बहुत ही कम सहायता मिलती थी।

समय बीतता गया। तब वसन्त ऋतु में एक दिन मौसीजी के पास अलीसा का एक पत्र आया। वे उन दिनों लहाव्र में नहीं थीं, और उन्होंने उस पत्र को मेरे पास भेज दिया। उसमें से उस हिस्से को मैं ज्यों का त्यों नकल कर देता हूं, जिससे मेरी कहानी पर प्रकाश पड़ता है—

"मेरी अपने को ढाल लेने की प्रवृत्ति की तारीफ करो। तुम्हारी सम्मति के अनुसार मैं महाशय तिसिए से मिली और सुदीर्घ समय तक उनसे बात भी की। मैं स्वीकार करती हूं, कि उनका व्यवहार निर्दोष रहा है, और मैं यह भी जानती हूं कि मुझे यह विश्वास होने लगा है, कि इस विवाह का परिणाम उतना बुरा नहीं होगा, जितना मुझे शुरू में भय था। ज्यूलिएत् उन्हें निश्चय ही प्यार करती है, पर वे मुझे हर सप्ताह उसके प्रेम के कम-कम अयोग्य प्रतीत होते हैं। वे बहुत ही स्पष्ट दृष्टि से सारी परिस्थिति पर बातचीत करते हैं, और मेरी बहन के चरित्र व स्वभाव के विषय में कोई गलती नहीं करते हैं। उन्हें अपने प्रेम की क्षमता में बहुत अधिक विश्वास है, और उन्हें निश्चय है, कि ऐसी कोई बात नहीं है, जिस पर उनका सतत प्रयत्न विजय न प्राप्त कर ले। मतलब यह हुआ, कि वे बहुत

अधिक प्रेमासक्त हैं। हां, जरोम को अपने भाई के लिए इतनी तकलीफ उठाते देखकर मैं बहुत प्रभावित हुई हूं। मेरा विचार है, कि केवल कर्तव्य-बुद्धि-से ही वे ऐसा करते हैं, क्योंकि रावेअर की प्रकृति उनसे बहुत भिन्न है--और शायद मुझे प्रसन्न करने के लिए भी--पर निःसन्देह अब तक वे समझ गय होंगे, कि कर्तव्य की भावना को जितने गम्भीर रूप में लिया जाता है, उतना ही आत्मा का शिक्षण और उन्नति होती है। शायद तुम समझोगी, कि ये बहुत ऊंचे विचार हैं। पर अपनी नासमझ भाञ्जी पर बहुत अधिक मत हंसना, क्योंकि ये ही विचार हैं, जो मुझे सहारा देते हैं, और जो मुझे ज्यूलिएत् के विवाह को अच्छा समझने का प्रयत्न करने में सहायता देते हैं।

"प्यारी मौसीजी, तुम जो इतने प्रेम के साथ मेरी चिन्ता करती हो, उसकी मेरी निगाह में बहुत कीमत है। पर यह मत ख्याल कीजिए, कि मैं दुःखी हूं। बल्कि मैं तो यहां तक कह सकती हूं, कि बात उससे बिलकुल उलटी है, क्योंकि जिस परीक्षा में से ज्यूलिएत् गुजरी है, उसका प्रभाव मुझ पर भी पड़ा है। बाइबल के वे शब्द, जिन्हें मैं अच्छी तरह समझे बिना दोहराया करती थी, अब अकस्मात् मुझे बिलकुल स्पष्ट हो गये हैं--"उस मनुष्य को धिक्कार है, जो दूसरे मनुष्यों पर भरोसा करता है।" अपनी बाइबल में इन शब्दों से परिचित होने के बहुत पहले मैंने उन्हें एक छोटे-से क्रिसमस-कार्ड पर पढ़ा था, जिसे जरोम ने मुझे तब भेजा था, जब वह अभी पूरे बारह वर्ष का भी नहीं हुआ था, और मैं जब चौदह वर्ष की थी। उस पर फूलों का एक गुच्छा चित्रित था, जो तब हमें बहुत सुन्दर लगा था। उसके साथ ही उस कार्ड पर कार्नेय्य की ये पक्तियां लिखी हुई थीं--

यह कैसा विश्व-विजयी आकर्षण है,
जो आज मुझे भगवान् की ओर ले जा रहा है।
वह मनुष्य कितना अभागा है, जो
अपना अवलम्ब मनुष्यों को बनाता है।

"मैं मानती हूं, कि मुझे जेरेमी का सरल मूल पाठ बहुत अधिक पसन्द है। इसमें सन्देह नहीं, जब जरोम ने इस कार्ड को चुना था, तो उसने इन पंक्तियों पर अधिक ध्यान नहीं दिया होगा। पर यदि मैं उसकी चिट्ठियों से निर्णय करूं, तो आजकल उसके मन का झुकाव मुझसे बहुत भिन्न नहीं है, और प्रतिदिन मैं ईश्वर को धन्यवाद देती हूं, कि वह हम दोनों को एक ही तरह से अपने पास लाने में समर्थ हुआ है।

"हमारी जो बातचीत हुई थी, वह मुझे याद है। अब मैं उसे उतना अधिक नहीं लिखती हूं, जितना पहले लिखा करती थी, ताकि उसके काम में विघ्न न हो। यदि अब मैं आगे लिखती ही जाऊंगी, तो तुम निःसन्देह सोचोगी, कि अब मैं उसके विषय में बहुत अधिक बातें करके अपनी कमी को पूरा कर रही हूं। इसलिए पत्र को यहीं समाप्त करती हूं। अब की बार मुझे बहुत भली-बुरी मत सुनाना।"

इस पत्र से मेरे मन में क्या-क्या विचार पैदा हुए। मैंने मौसी को दूसरों के मामलों में बेकार टांग अड़ाने की प्रवृत्ति के कारण बहुत कोसा। (वह क्या बातचीत थी, जिसके विषय में अलीसा ने लिखा है, और जो उसके मौन का कारण थी?) और साथ ही उसकी इस भद्दी आदत के लिए भी, जिसके कारण उसने यह मुझे पत्र भेज दिया था। पहले ही अलीसा के मौन को सहन करना मेरे लिए मुश्किल था। वह जो कुछ किसी और व्यक्ति को लिखती थी और जिसे वह मुझे बताने की परवाह नहीं करती थी---यदि उस सबको मैं न जान पाता, तो क्या यह हजारगुना अच्छा न होता। उस पत्र की हरेक बात ने मेरे अन्दर विक्षोभ पैदा किया। हमारे छोटे-छोटे निजी मामलों के विषय में उसका मौसीजी को लिखना, उसके स्वर की स्वाभाविकता, उसकी शान्ति, उसकी गम्भीरता और उसका विनोद---ये सब बातें मुझे क्षुब्ध कर रही थीं।

"नहीं, नहीं, प्रिय भाई, इस पत्र में इसके अलावा और कोई बात तुम्हें विक्षुब्ध नहीं करती है, कि यह तुम्हें सम्बोधन करके नहीं लिखा गया

है।" आबेल बोला, वह मेरा प्रतिदिन का साथी था, क्योंकि वही एक ऐसा व्यक्ति था, जिससे मैं बात कर सकता था और अपने अकेलेपन की कमजोरी के कारण मैं उसकी ओर लगातार अधिकाधिक खिचता जाता था। मेरे हृदय में सहानुभति की असन्तुष्ट इच्छा थी, अपने ऊपर मुझे विश्वास नहीं था, और जब मैं गलती करता था, तो उसकी सम्मति को मैं बहुत महत्त्व देता था, यद्यपि हमारी प्रकृतियों में बहुत अधिक अन्तर था और शायद यही इस आकर्षण का कारण भी था।

वह पत्र को अपनी लिखने की टेबुल पर फैलाकर बोला--"आओ, इस कागज का अनुशीलन करें।"

तीन रात तक मेरा मन बहुत विक्षुब्ध अवस्था में रहा था, और चार दिन तक इस बात को मैंने अपने तक ही सीमित रखा था। जब आवेल ने मुझसे निम्नलिखित बात कही, तो सर्वथा स्वाभाविक रूप से मैं एक निश्चित परिणाम पर पहुंच गया।

"हम ज्यूलिएत् और तिसिए के मामले को प्रेमाग्नि के अर्पण करते हैं--है न ? हम जानते हैं, वह अग्नि कैसी है। मेरा विचार है, कि तिसिए ठीक प्राणी है, अपने पंख उस आग में जलाने के लिए।"

उसका यह व्यंग्य मुझे असह्य था, अतः मैंने कहा--"बस इतना ही काफी है। अब शेष बात पर विचार करो।"

"शेष ?" वह बोला--"शेष सब तुम्हारे लिए है। उसमें तुम्हारी शिकायत करने लायक ज्यादा बात नहीं है। एक पंक्ति भी ऐसी नहीं है, एक शब्द भी ऐसा नहीं है, जो तुम्हारे विचार से परिपूर्ण नहीं है। तुम यह भी कह सकते हो, कि सारा पत्र तुम्हीं को सम्बोधन करके लिखा गया है। जब मौसी फेलिसी ने उसे तुम्हारे पास भेज दिया, तो उसने उसे केवल उसके ठीक स्वामी को ही भेज दिया। अलीसा उस देवी को, तुम्हारे अभाव में, एक स्थानापन्न के तौर पर लिखती है। कार्नेय्य की पंक्तियां (जो वास्तव में रासीन की हैं) तुम्हारी मौसी के किस काम की हैं ? मैं तुम्हें बताता

हूं, वह तुमसे बात कर रही है, वे सब बातें वह तुमसे कह रही है। तुम बिल-कुल मूर्ख होगे, अगर अबसे पन्द्रह दिन बाद तुम्हारी ममेरी बहन तुम्हें ठीक ऐसी ही चिट्ठियां न लिखने लग जाय, ऐसी ही लम्बी, ऐसी ही सरल और ऐसी ही मनमोहक........वह सीधे रास्ते पर तो चलती ही नहीं है।"

"वह उस रास्ते को पकड़े, यह तुम पर निर्भर करता है। क्या तुम मेरी सलाह चाहते हो? प्रेम या विवाह के विषय में एक शब्द भी मत लिखना। क्या तुम यह नहीं देखते हो, कि उसकी बहन की बदकिस्मती के बाद से वह इन बातों के विरुद्ध हो गई है? तुम भ्रातृत्व के सूत्र को पकड़े रहो और विश्रान्ति अनुभव किये विना उससे राबेअर के विषय में बातें करते रहो—जब कि तुममें उस गधे की देखभाल करने का धीरज है। एसी बातें करते जाओ, जो उसकी बुद्धि के लिए सुखदायक हों, बाकी सब स्वयं ठीक हो जायगा। आह, यदि मैं तुम्हारे स्थान पर होता, यदि मुझे उसे पत्र लिखना होता!"

"तुम उसके प्रेम के योग्य नहीं हो!"

फिर भी, मैं आबेल की सलाह पर चला और वस्तुतः अलीसा के पत्र अधिक सजीव होने लगे। पर मुझे यह आशा नहीं थी, कि जब तक उसे यह भरोसा नहीं हो जायगा, कि अब ज्यूलिएत् सर्वथा प्रसन्न है, या कम से कम उसकी स्थिति बिलकुल स्पष्ट है, तब तक वह सचमुच सुखी हो सकेगी, या खुलकर बातें करेगी।

अलीसा अपनी बहन के जो समाचार भेजती थी, वे अब अधिक-अधिक अच्छे होते गय। उसकी शादी जुलाई में होनी थी। अलीसा ने मुझे लिखा, कि उसका विचार है, कि उन दिनों में आबेल और मैं अपनी पढ़ाई में व्यापृत होंगे। मैं समझ गया, कि वह इस शादी में हमारा शामिल होना अच्छा नहीं समझती। इसलिए हमने किसी इम्तहान का बहाना बना दिया, और अपनी सदिच्छाएं भेजकर ही सन्तुष्ट हो गये।

व्याह के पन्द्रह दिन बाद अलीसा ने मुझे यह पत्र लिखा—

"मेरे प्यारे जरोम, तुम मेरे आश्चर्य की कल्पना तो करो। कल मैं तुम्हारी दी हुई रासीन की सुन्दर पुस्तक के पन्ने पलट रही थी, विना किसी खास मतलब के। अकस्मात् मुझे ये चार लाइनें मिलीं, जो तुम्हारे दिये हुए एक पुराने क्रिसमस-कार्ड पर छपी हैं। उस कार्ड को मैंने अपनी बाइबल में पिछले दस वर्षों से रख छोड़ा है।

यह कैसा विश्व-विजयी आकर्षण है,
जो आज मुझे भगवान् की ओर ले जा रहा है।
वह मनुष्य कितना अभागा है, जो
अपना अवलम्ब मनुष्यों को बनाता है।

मेरा विचार था, कि ये पक्तियां कार्नेय्य के भाष्य की हैं। यह मुझे स्वीकार करना पड़ेगा, कि मेरी इनके विषय में वहुत ऊंची सम्मति नहीं थी। पर जब मैं चौथा सर्ग पढ़ रही थी, तो मुझे कुछ पद्य मिले, जो इतने सुन्दर हैं, कि मैं उनकी नकल करने का लोभ संवरण नहीं कर सकती। निःसन्देह तुम उन्हें पहले से ही जानते हो, क्योंकि यह मैं बगैर सोचे-समझे की हुई तुम्हारी उस सही से आंक सकती हूं, जो तुमने पुस्तक के हाशिए पर कर दी है।" (यह सच है, कि यह मेरी आदत थी कि अपनी और अलीसा दोनों की पुस्तकों के जिन उद्धरणों को मैं पसन्द करता था, और चाहता था कि अलीसा भी उन्हें पढ़े, उनके किनारे मैं उसके नाम का पहला अक्षर लिख दिया करता था) कोई बात नहीं, मैं उन्हें अपनी खुशी के लिए लिख रही हूं। पहलेपहल तो यह देख कर मुझे कुछ वुरा लगा, कि जिसको मैंने अपना आविष्कार समझा था, तुम उसका पहले ही निर्देश कर गये हो। पर शीघ्र यह दुष्ट भावना इस प्रसन्नता-दायक विचार के सामने दब गई, कि तुम भी उन्हें उतना ही पसन्द करते हो, जितना कि मैं। जब मैं यह नकल कर रही हूं, तो ऐसा अनुभव होता है, मानो हम-तुम दोनों उन्हें इकट्ठे पढ़ रहे हैं।

शाश्वत अमर मेधा की

आवाज गरज रही है और हमें आदेश देती है ।
वह कहती है, मानव के पुत्रो !
तुम्हारे प्रयत्न का क्या परिणाम है ?
उच्छृंखल जीव, जिसकी नसों में
शुद्धतम रक्त का प्रवाह है, किस भूल के कारण
तुम वहुधा खरीद लेते हो
वह रोटी नहीं, जो कि तुम्हारा पोषण करनेवाली है
अपितु एक ऐसी छाया को, जो तुम्हें छोड़ देती है ।
पहले की भी अपेक्षा अधिक बुभुक्षित दशा में ।
मैं तुम्हें एक ऐसी रोटी बताती हूं
जो देवों के पोषण के उपयोग की है
भगवान् स्वयं जिसका निर्माण करता है
अपनी गेहूं के आटे से ।
यह रोटी इतनी अधिक स्वाद है,
कि इसे साधारणतया नहीं परोसा जाता
उस दुनिया में, जिसका तुम अनुसरण करते हो ।
जो मेरा अनुसरण करना चाहता है, उसे मैं यह देती हूं
आओ, जो जीवन के इच्छुक हो,
यह लो, इसे खाओ और जीवन को प्राप्त करो ।

× × ×

सौभाग्यवश, तुम्हारे बन्धन में
बद्ध आत्मा शान्ति प्राप्त करती है,
और जीवन के जल का पान करती है,
वह जल, जिसकी कभी समाप्ति नहीं होती ।
इस विशाल जलाशय से सब कोई जल ले सकता है
यह सारे संसार को निमन्त्रण देता है;

पर हम मूर्खतावश इससे भागते हैं
गंदले सोतों की तलाश में
या भ्रमपूर्ण जोहड़ों के पीछे,
जिनसे कि जल निरन्तर क्षीण होता जाता है।

"कितने सुन्दर हैं ये, जरोम, कितने सुन्दर हैं ये। क्या तुम इन्हें उतना ही सुन्दर समझते हो, जितना कि मैं ? पुस्तक का जो संस्करण मेरे पास है, उसके एक नोट में लिखा है, कि श्रीमती द मेन्तनों ने जब कुमारी दुमेल का यह पद्य गीत सुना, तो वह प्रशंसा की भावना से विभोर हो गई, उसके आंसू बहने लगे और इस पद्य का एक भाग उसने फिर पढ़वाकर सुना। अब तो यह मुझे कण्ठस्थ हो गया है, और मैं इसे पढ़ते-पढ़ते कभी नहीं थकती हूं। मुझे सिर्फ यही अफसोस है, कि मैंने तुम्हें इसे पढ़ते नहीं सुना है।

"हमारे यात्रियों के समाचार बहुत अच्छे आ रहे हैं। यह तो तुम्हें मालूम ही है, कि भयंकर गर्मी के बावजूद भी ज्यूलिएत् को बायोन और बियारिज घूमने में बहुत आनन्द आया। उसके बाद वे फोंतारबी गय, बुर्गों में ठहरे और पिरेनीज दो बार हो आये। अब उसने मुझे मोंसरा से बहुत उत्साहपूर्ण पत्र लिखा है। नीम लौटने से पहले वे बार्कलोना में दस दिन और ठहरना चाहते हैं। एदुआर सितम्बर से पहले नीम लौट आना चाहता है, जिससे कि वह अंगूरों के चुनने के काम की देखभाल कर सके।

"फांग्युस्मार में रहते हुए मुझे और पिताजी को एक सप्ताह हो गया है, और आशा है कि कुमारी ऐशबर्टन और राबेअर भी चार दिन में यहां पहुंच जायंगे। तुम्हें मालूम ही है, कि बेचारा लड़का अपनी परीक्षा में फेल हो गया है। परीक्षा कठिन तो नहीं थी, पर परीक्षक ने उससे ऐसे विचित्र प्रश्न पूछे कि वह घबरा गया। तुमने लिखा था। कि वह पढ़ाई के लिये बहुत प्रयत्नशील रहता था। इससे मैं यह तो विश्वास नहीं कर सकती,

कि उसने ठीक तैयारी नहीं की। पर ऐसा प्रतीत होता है, कि इस परीक्षक को लड़कों को फेल करने में आनन्द आता है।

"प्रिय मित्र! तुम्हारी सफलताओं का जहां तक सम्बन्ध है, मैं मुश्किल से ही यह लिख पाती हूं, कि मैं तुम्हें बधाई देती हूं। मुझे तुम पर इतना अधिक विश्वास है, जरोम! कि जब कभी मैं तुम्हारे विषय में सोचती हूं, मेरा हृदय आशा से भर जाता है। जिस कार्य के विषय में तुमने लिखा है, क्या तुम उसे एकदम शुरू कर सकोगे?

"यहां बाग में तो कुछ भी नहीं बदला है, पर घर तो बिलकुल खाली-खाली महसूस होता है। यह तो तुम समझ ही गये, कि मैं तुम्हें यहां आने के लिए इस वर्ष क्यों नहीं लिख रही हूं। मैं अनुभव करती हूं, कि तुम्हारा न आना ही अच्छा होगा। मैं अपने को दिन-प्रतिदिन यही समझाती रहती हूं, क्योंकि इतने दिनों तक तुमसे मिले बिना रहना बहुत कठिन है। कभी-कभी मैं न चाहते हुए भी तुम्हारी प्रतीक्षा करने लग जाती हूं। मैं पढ़ते-पढ़ते बीच में रुक जाती हूं, जल्दी से सिर फिराकर देखने लगती हूं.....ऐसा मालूम पड़ता है, जैसे तुम वहां मौजूद हो।

"मैं अपने पत्र को जारी रखती हूं। अब रात्रि का समय है; हर कोई सो गया है; मैं तुम्हें पत्र लिखते हुए बड़ी देर तक जाग रही हूं, मैं खुली हुई खिड़की के सामने बैठी हूं। बगीचे से तरह-तरह की सुगन्धें उठ रही हैं, हवा गरम है। शायद तुम्हें याद है, जब हम बच्चे थे, तब जब कभी हम कोई बहुत सुन्दर वस्तु देखते थे या सुनते थे, तो हम कहते थे—"ईश्वर को धन्यवाद है, कि उसने उसे उत्पन्न किया।" आज रात अपने समग्र हृदय से मैंने कहा—"ईश्वर को धन्यवाद है, उसने इतनी सुन्दर रात्रि उत्पन्न की।" और अकस्मात् मेरी इच्छा हुई कि तुम यहां आओ—मैंने अनुभव किया, तुम मेरे पास मौजूद हो—इस इच्छा में, इस अनुभूति में इतनी तीव्रता थी, कि शायद तुमने भी इसे अनुभव किया हो। हां, जब तुमने अपने पत्र में निम्नलिखित बात लिखी, तो ठीक ही लिखी,

"उदार हृदयों में प्रशंसा का भाव कृतज्ञता के भाव में लीन हो जाता है।" और भी कितनी ही बातें हैं, जिन्हें मैं तुम्हें लिखना चाहूंगी। मुझे उन आमोद-प्रमोद-पूर्ण स्थानों का ध्यान आता है, जिनके विषय में ज्यूलिएत् बातें करती है। मुझे और भी स्थानों का ध्यान आता है, जो बहुत ज्यादा विशाल हैं, वहुत अधिक उज्ज्वल हैं, या एक रेगिस्तान के समान हैं। मेरे अन्दर एक विचित्र विश्वास बद्धमूल है, कि किसी दिन—लेकिन मैं यह नहीं कह सकती कि किस तरह—तुम और मैं इकट्ठे किसी रहस्य-मय विशाल देश को देखेंगे। लेकिन, हाय! यह नहीं जानती कि कौन से..............."

निःसन्देह तुम आसानी से कल्पना कर सकते हो, कि आनन्द की कैसी अतिशयता के साथ मैंने इस पत्र को पढ़ा, प्रेम की कितनी सिसकियां मुझको आई। और भी पत्र आये। यह सच है, कि अलीसा ने फांग्युस्मार न आने के लिए मुझे धन्यवाद दिया। यह सच है, कि उसने प्रार्थना की, कि मैं इस वर्ष उससे मिलने की कोशिश न करूं, पर उसे मेरी अनुपस्थिति के कारण दुःख था। इस समय उसे मेरी आवश्यकता थी; उसके एक-एक पृष्ठ पर यही अनुरोध था। पर उसे स्वीकार करने की शक्ति मेरे अन्दर कैसे आई? निःसन्देह आबेल की सलाह के कारण, और कहीं मैं अपनी प्रसन्नता को खो न बैठूं, इस भय के कारण, और साथ ही इस कारण कि मेरे हृदय के झुकाव के विरुद्ध मेरी इच्छा-शक्ति बहुत प्रबल थी।

इसके बाद जो पत्र आये, उनसे मैं उन अंशों की नकल करता हूं, जिनसे मेरी कहानी का सम्बन्ध है।

"प्यारे जरोम,

तुम्हारा पत्र पढ़ते-पढ़ते मेरा हृदय आनन्द से भर गया। ओर्वितो से लिखे हुए तुम्हारे पत्र का उत्तर मैं देनेवाली ही थी, जब कि पेरूज और आस्सीज से लिखे हुए तुम्हारे पत्र इकट्ठे ही मिले। मेरा मन यात्री बन गया है, केवल शरीर-मात्र ही यहां पड़ा रह गया है; वास्तव में तो आम्ब्री की

सफेद सड़कों पर मैं तुम्हारे साथ हूं। मैं सुबह तुम्हारे साथ चल पड़ती हूं और नवीन आंखों से सूर्योदय को देखती हूं.....क्या कार्तोन के छज्जे पर तुमने मुझे सचमुच पुकारा था ? मैंने तो तुम्हारी आवाज सुनी थी। आस्सीज के ऊपर की पहाड़ियों पर हमें कितनी प्यास लगी थी। पर फ्रान्सिसकन का पानी का गिलास हमें कितना अच्छा लगा था। अहा, मेरे मित्र, सब वस्तुएं म तुम्हारे द्वारा ही देखती हूं। तुमने सन्त फ्रान्सुआ के विषय में जो लिखा है, वह मुझे कितना अच्छा लगता है। हां, हमें जिस बात का प्रयत्न करना चाहिए, वह मन या विचार से मुक्ति नहीं, अपितु उनकी उच्चता व उत्कृष्टता है। क्यों, ठीक है न ? मन की मुक्ति का विचार एक घृणित गर्व के साथ सम्बद्ध है। हमारी महत्त्वाकांक्षा विद्रोह के लिए नहीं, अपितु सेवा के लिए होनी चाहिए।

"नीम का समाचार इतना अच्छा है, कि ऐसा प्रतीत होता है, मुझे ईश्वर से आनन्द मनाने की अनुमति मिल गई है। इन गर्मियो में मुझ पर दुःख की केवलमात्र एक छाया है, वह है मेरे बेचारे पिताजी की दशा। मेरी इतनी देखभाल के बावजूद वे अभी भी उदास रहते हैं, अथवा जैसे ही मैं उन्हें अकेला छोड़ देती हूं, वे उदासी में डूब जाते हैं और उनकी इस उदासी को दूर कर सकना अधिकाधिक कठिन होता जा रहा है। प्रकृति के वे सारे आनन्द, जो हमें घेरे हुए हैं, एक ऐसी भाषा बोलते हैं, जो उनके लिए विदेशी है। वे अब उस भाषा को समझने का प्रयत्न भी नहीं करते हैं। कुमारी ऐशबर्टन अच्छी हैं। मैं तुम्हारे पत्र उन दोनों को पढ़कर सुना देती हूं। प्रत्येक पत्र से हमको तीन दिन तक बातचीत का विषय मिल जाता है; और तब तुम्हारा एक नया पत्र आ जाता है।

"राबेअर यहां से परसों चला गया है। वह अपनी बची हुई छुट्टियां अपने दोस्त र...के साथ बितावेगा, जिसका पिता एक आदर्श कृषि-फार्म का अध्यक्ष है। वास्तव में जो जीवन हम यहां बिताते हैं, उसमें उसे

आनन्द नहीं आता। जब उसने जाने की बात कही, तो मैंने उसके विचार को प्रोत्साहित करना उचित समझा ।

"....मैं तुमसे इतनी अधिक बातें करना चाहती हूं । मैं बातचीत की प्यासी हूं, अनन्त बातों की। कभी-कभी मुझे शब्द नहीं मिलते, स्पष्ट विचार नहीं सूझते––आज की शाम तो मानो मैं स्वप्नाविष्ट-सी होकर लिख रही हूं । मुझे अनुभव होता है, कि मेरे पास अनन्त धन है, जिसे मुझे देना है और साथ ही लेना भी है ।

"हम इतने दीर्घ-दीर्घ मासों तक मौन क्यों कर रह सके ? निःसन्देह भयंकर शीतप्रदेशीय जन्तुओं के शीतकालीन अभ्यास के समान हम सोये पड़े थे । आह, हमारे मौन की यह भयावनी शीत ऋतु हमेशा के लिए समाप्त हो जाय। अब जब तुम मुझे फिर मिल गये हो, तो जीवन, विचार और हमारी आत्माएं––सब कुछ मुझे सुन्दर प्रशंसनीय और अनन्त समृद्धि-पूर्ण प्रतीत होता है ।"

१२ सितम्बर

"मुझे पिसा से लिखा तुम्हारा पत्र मिला । यहां भी मौसम अत्यन्त सुहावना है। पहले कभी नार्मान्दी मुझे इतनी सुन्दर नहीं प्रतीत हुई। परसों मैंने बहुत ही लम्बा भ्रमण किया, मैं देहात में इधर-उधर घूमती रही। जब मैं वापस लौटी, तो उतनी थकी नहीं थी, जितनी कि उत्तेजित थी, धूप और आनन्द के कारण मैं प्रायः मस्त सी थी। जलती हुई धूप में घास के ढेर कितने सुन्दर प्रतीत होते थे । जो वस्तुएं मुझे सुन्दर दिखाई देती थीं, उनको वैसा समझने के लिए मुझे अपने इटली में होने की कल्पना करने की जरूरत नहीं थी ।

"हां, मेरे दोस्त, यह तुम्हारे कथनानुसार आनन्द की उच्च प्रेरणा है, जो मैं प्रकृति के मिश्रित गान में सुनती और समझती हूं। मैं उसे पक्षी के संगीत में सुनती हूं, प्रत्येक फूल की सुगन्धि में मैं उसकी सांस लेती हूं । मैं

अब उस स्तर पर पहुंच गई हूं, जब प्रकृति-पूजा ही प्रार्थना का एकमात्र रूप रह जाता है। मैं सन्त फ्रान्सुआ के साथ बार-बार दोहराती हूं—'मेरे भगवान् मेरे भगवान्.....' और, और कुछ नहीं—मेरा हृदय अवर्णनीय प्रेम से भर जाता है।

"पर तुम डरो मत, यह मत समझना, कि मैं मूर्ख व अज्ञानी बन जाऊंगी। पिछले दिनों मैं बहुत कुछ पढ़ती रही हूं। वर्षा के कतिपय दिनों में अपना सब ध्यान मैं पुस्तकों में लगाती रही हूं। मालब्राश को समाप्त करके मैंने लीबनिज-कृत 'क्लार्क को पत्र' पुस्तक प्रारम्भ की। तब विश्राम के रूप में शैली की 'सेन्सी' पढ़ी, पर आनन्द नहीं आया, 'अनुभूतिशील पौदा' भी पढ़ डाला। मैं तुम्हें बहुत नाराज कर दूंगी, पर कीट्स की उन चार कविताओं पर मैं प्रायः सारे शैली और सारे बायरन को न्योछावर कर सकती हूं, जो हमने पिछले वर्ष साथ-साथ पढ़ी थीं। वैसे ही बादलेअर के कुछ छन्दों के सामने सारे ह्यूगो की भी मेरी दृष्टि में कोई कीमत नहीं। 'महान् कवि' शब्द का कोई महत्त्व नहीं है। 'पवित्र कवि' होना ही महत्त्व की बात है। अहा, मेरे भाई! तुम्हारी कृपा से ही मैं इन चीजों को जानने, समझने और प्रेम करने योग्य हो सकी।

"नहीं, कुछ दिनों की मुलाकात के लिए अपनी यात्रा को संक्षिप्त मत करना। यदि गम्भीरता-पूर्वक विचार किया जाय, तो यही अच्छा है, कि अभी हम एक दूसरे से न मिलें। मेरा विश्वास करो, यदि तुम मेरे पास होते, तो मैं तुम्हारे विषय में अधिक न सोच सकती। तुम्हें कष्ट पहुंचा कर मैं दुखी हूंगी, पर अब मैं उस स्थिति में पहुंच गई हूं, जब मुझे तुम्हारी उपस्थिति की और अधिक आवश्यकता नहीं है। क्या मैं इस बात को तुम्हारे सामने स्वीकार कर लूं? यदि मुझे मालूम हो जाय, कि तुम आज शाम को आ रहे हो, तो मैं कहीं भाग जाऊं।

"कृपा कर, मेरी इस भावना की व्याख्या करने को मुझे मत लिखना। मैं केवल यही जानती हूं, कि मैं अविराम तुम्हारे विषय में सोचती रहती हूं

(यह बात तुम्हारी प्रसन्नता के लिए पर्याप्त होनी चाहिए); और दूसरे यह बात कि मैं इसी अवस्था में प्रसन्न हूं।"

इस अन्तिम पत्र के मिलने के कुछ दिनों बाद और इटली से मेरे लौटने के तुरन्त बाद मुझे सैनिक सेवाके लिए बुला लिया गया और नैन्सी भेज दिया गया। मैं वहां एक भी जीवित प्राणी से परिचित न था, पर मुझे खुशी थी कि मैं अकेला था, क्योंकि यह स्थिति मुझ प्रेमी के अभिमान को और अलीसा को—दोनों को स्पष्ट थी, कि उसके पत्र ही मेरे एकमात्र शरण थे और जैसा कि रोंसार ने कहा था, उसी का ध्यान "मेरी एकमात्र अभिव्यक्ति थी।"

इस समय जिस अत्यन्त कठिन नियन्त्रण में हमें रहना पड़ता था, यदि सच कहूं, तो वह मुझे बहुत हल्का और अच्छा मालूम होता था। उसे सहन करने के लिए मैंने अपने को कठोर बना लिया था और अलीसा को लिखे अपने पत्रों में मैं केवल एक बात की शिकायत करता था, और वह थी उसकी अनुपस्थिति। इस लम्बी जुदाई में हमें अपनी वीरता के अनुरूप परीक्षा का अवसर भी प्राप्त हुआ। अलीसा ने मुझे लिखा—"तुम जो कभी शिकायत नहीं करते हो, तुम जिसके विचलित होने की मैं कल्पना भी नहीं कर सकती", उसके शब्दों की सचाई को सिद्ध करने के लिए मैं क्या कुछ सहन नहीं कर सकता था ?

हमारी अन्तिम मुलाकात को प्रायः एक वर्ष हो गया था। वह इसे कुछ गिनती ही नहीं थी। वह समझती थी, कि उसकी प्रतीक्षा का समय तो अब शुरू हुआ है। मुझे इस बात की उससे सख्त शिकायत थी।

उसने उत्तर दिया—"क्या मैं तुम्हारे साथ इटली में नहीं थी ? अकृतज्ञ, मैंने तुम्हें एक दिन के लिए भी नहीं छोड़ा। यह बात तुम्हें समझ लेनी चाहिए, कि अब कुछ समय के लिए मैं अधिक देर तक तुम्हारा साथ नहीं दे सकती। यही चीज है, केवल यही चीज है, जिसे मैं वियोग कहती हूं। यह सच है, कि एक सैनिक के रूप में तुम्हारी कल्पना करने की मैं बहुत

कोशिश करती हूं। पर मैं सफल नहीं हुई। अधिक से अधिक शाम के समय में तुम्हें गम्बेता रोड के एक छोटे-से कमरे में लिखते या पढ़ते हुए ही देख सकती हूं---पर नहीं, इतना भी नहीं, वास्तव में तो अबसे एक वर्ष बाद फांग्युस्मार या लहाव्र में ही मैं तुम्हें देख सकूंगी।

"एक वर्ष ! जो दिन बीत चुके हैं, उन्हें मैं नहीं गिनती। मेरी आशा की दृष्टि भविष्य में उसी बिन्दु पर लगी हुई है, जो धीरे-धीरे पास खिसकता आ रहा है। तुम्हें हमारे बगीचे के सिरे पर उस नीची दीवार की याद होगी, जिसके साथ-साथ क्रिसन्थम के फूलों की क्यारियां हैं, कभी-कभी हम उस पर चढ़कर कैसे आर-पार चले जाया करते थे। तुम और ज्यूलिएत् तो इतनी बहादुरी से चले जाते थे, मानो कि तुम मुसलमान हो, जो कि सीधे बहिश्त को चले जा रहे हैं। पर मेरा तो एक-दो कदम चलते ही सिर घूमने लगता था और तुम मुझे नीचे से पुकारकर कहते थे---"अपने पैरों की ओर मत देखो, आंखें सामने की ओर रखो। रुको मत ! आखिरी सिरे की ओर देखो, और तब आखिरकार---और तुम्हारे शब्दों की अपेक्षा यह बात अधिक सहायक सिद्ध होती थी---तुम दीवार के दूसरे सिरे पर चढ़ जाते थे और मेरी प्रतीक्षा करते थे। तब मेरी कंपकंपी बन्द हो जाती थी, मेरा सिर नहीं घूमता था। तब मुझे तुम्हारे सिवा और कुछ दिखाई नहीं देता था, मैं दौड़ती जाती थी, जब तक कि मैं तुम्हारी खुली बांहों में नहीं पहुंच जाऊं।

"जरोम, यदि तुममें मेरा विश्वास न रहे, तो मेरा क्या होगा ? मुझे आवश्यकता है, कि मैं यह अनुभव करूं कि तुम शक्तिशाली हो। मुझे तुम्हारे सहारे की आवश्यकता है। तुम निर्बल मत होना।"

एक प्रकार की प्रतिरोध भावना के कारण हमने प्रसन्नतापूर्वक अपने वियोग के काल को और आगे बढ़ा दिया। साथ ही, हमें यह भी भय था कि हमारा मिलन शायद सन्तोषप्रद न हो। हमने निश्चय किया कि क्रिसमस की कुछ दिनों की छुट्टी मैं कुमारी ऐशबर्टन के साथ पेरिस में बिताऊं।

मैं यह पहले ही कह चुका हूं, कि अलीसा की सब चिट्ठियां मैं यहां नहीं दे रहा हूं। एक पत्र मुझे फरवरी के मध्य के करीब मिला, वह यह है——

"परसों जब मैं रू द पेरिस से गुजर रही थी, तो म....की दूकान की खिड़की में आबेल की पुस्तक बहुत शानदार तरीके से सजाई हुई थी। उसे देखकर मैं बहुत उत्तेजित हुई। वैसे तो तुमने सूचित कर दिया था, कि वह प्रकाशित हो गई है, पर मैं इसकी सत्यता में विश्वास नहीं कर सकी थी। मैं अन्दर जाने का प्रलोभन नहीं रोक सकी; पर उसका मुखपृष्ठ मुझे इतना हास्यास्पद प्रतीत हुआ, कि मुझे दूकानदार को उसे देने के लिए कहने में संकोच हुआ। मैंने सोचा, कोई भी और पुस्तक खरीदकर दूकान से बाहर चली जाऊं। सौभाग्यवश, काउन्टर पर किताबों की एक छोटी-सी ढेरी ग्राहकों के वास्ते रखी थी। मैंने उनमें से एक पुस्तक उठा ली। वहां मैंने पैसे रख दिये और मुझे बोलने की कोई आवश्यकता नहीं हुई।

"मैं आबेल की कृतज्ञ हूं, कि उसने मुझे अपनी पुस्तक नहीं भेजी। उसके पन्ने उलटते हुए मुझे बहुत लज्जा अनुभव हुई। लज्जा का अनुभव पुस्तक के कारण उतना नहीं हुआ——आखिर मुझे उसमें भद्रता की अपेक्षा बेवकूफी अधिक दिखाई दी——जितना कि यह सोचकर कि उसे आबेल ने, आबेल वांतिए ने, तुम्हारे दोस्त ने लिखा है। मैंने अपने एक-एक पृष्ठ में उस महान् प्रतिभा की खोज की, जो 'तां' के समालोचक को उसमें दिखाई दी थी, पर मुझे सफलता नहीं हुई। लहाव्र के हमारे छोटे-से समाज में, जहां आबेल का जिक्र बहुधा होता रहता है, लोग कहते हैं कि पुस्तक बहुत सफल रही है। उसके मन की असाध्य निरर्थकता को जब मैं 'सरलता और सौन्दर्य' के नाम से पुकारे जाते सुनती हूं, तो मैं समझदारी से चुप रह जाती हूं। तुम्हारे सिवा और किसी को मैंने नहीं बताया है कि उसकी पुस्तक मैंने पढ़ी है। बेचारा पादरी वांतिए, जो पहले दुःखी दिखाई देता था——और बात ठीक भी थी——अब कभी-कभी सोचने लग जाता है, कि शायद अब उसके पास

अभिमान अनुभव करने के लिए पर्याप्त कारण है। उसके सारे परिचित लोग उसको इसके लिए प्रेरित करने के लिए अपनी शक्ति भर प्रयत्न कर रहे हैं। कल मौसी प्लांतिए के यहां, जब श्रीमती व....उससे अकस्मात् कह बैठीं "पादरी, तुम्हें तो अपने बेटे की आश्चर्यजनक सफलता पर बहुत ही प्रसन्न होना चाहिए," तो उसने कुछ संकुचित होकर उत्तर दिया "हे भगवान् ! मैं अभी ऐसा नहीं अनुभव करता।" इस पर मौसी भोलेपन के साथ, पर इतनी उत्साह भरी वाणी में बोलीं "पर तुम अनुभव करने लगोगे ! पर तुम अनुभव करने लगोगे !" इस पर प्रत्येक आदमी, यहां तक कि वह पादरी भी हंसने लगा।

"जब आबेल की दूसरी नई पुस्तक प्रकाशित होगी, तो वह कैसी होगी ? मैं सुनती हूं, कि बुलेवार के किसी नाट्य-गृह में उसका अभिनय होगा और पत्र-पत्रिकाएं अभी से उसके विषय में चर्चा करने लगी हैं। बेचारा आबेल ! क्या यही सफलता है, जिसकी उसे चाहना है ? क्या इससे उसे सन्तोष होगा ?

कल 'लांतेर्नेल कोंसोंलासियों' (आत्मिक सान्त्वना) में मैंने ये शब्द पढ़े—"जो मनुष्य शाश्वत और सच्चे गौरव की इच्छा करता है, वह ऐहलौकिक गौरव को कुछ नहीं गिनता। जो सांसारिक प्रतिष्ठा को अपने हृदय में स्थान देता है, वह वस्तुतः स्वर्गीय गौरव की चाह नहीं करता।" और मैंने सोचा "अहा, भगवान् ! तेरा धन्यवाद है कि तूने जरोम को अपने शाश्वत गौरव के लिए चुना है, जिसकी तुलना में दूसरी वस्तु व्यर्थता और मूर्खता-मात्र है।"

एकरस और नीरस कार्यों में हफ्ते और महीने गुजरते गये, पर क्योंकि आशाओं और स्मृतियों के अतिरिक्त और कोई वस्तु ऐसी नहीं थी, जिस पर मैं अपने विचारों को केन्द्रित कर सकता, अतः मेरा ध्यान समय के शनैः-शनैः बीतने पर या घण्टों की दीर्घता पर कठिनता से जाता था।

मामाजी और अलीसा जून में 'नीम' के पड़ोस में ज्यूलिएत् के पास

जानेवाले थे, क्योंकि उन दिनों उसके बच्चा होनेवाला था। उसके स्वास्थ्य-विषय के समाचार कुछ अच्छे न थे, अतः वे कुछ जल्दी चल पड़े।

अलीसा ने लिखा था—"ल्हाव्र के पते पर भेजा तुम्हारा आखिरी पत्र तब पहुंचा, जब हम वहां से चल चुके थे। मैं नहीं कह सकती, कि किस प्रकार यह पत्र हमारे यहां पहुंचने के आठ दिन पश्चात् मुझे यहां मिल सका। इस सारे सप्ताह भर मैं अपने आपे में नहीं रही। इस बीच में मेरी आत्मा अपूर्ण-सी, भयभीत-सी, अनिश्चित-सी और कुछ दयनीय-सी रही।

"ओह, मेरे भाई, मैं अपने आपे में सचमुच तभी होती हूं—तभी अपने को पूर्ण अनुभव करती हूं, जब मैं तुम्हारे साथ होती हूं। ज्यूलिएत् फिर कुछ अच्छी है। हमें प्रतिदिन उसकी प्रसूति की आशा है, पर विशेष चिन्ता की बात नहीं। उसे मालूम है, कि आज मैं तुम्हें पत्र लिख रही हूं। हमारे ऐग्यु-बीव् पहुंचने के अगले रोज, वह मुझसे बोली—

" 'और जरोम ? उसका क्या हुआ ? क्या वह अभी तक तुम्हें पत्र लिखता है ?' और मैं सत्य बात के अतिरिक्त उसे कह ही क्या सकती थी। उसने कहा 'उसे लिख देना कि...' वह क्षणभर चुप रही और तब बड़ी मीठी मुस्कान के साथ बोली कि 'अब मैं ठीक हो गई हूं।' मुझे हमेशा भय लगा रहता था कि अपने पत्रों में—जो हमेशा इतने विनोदपूर्ण होते हैं—वह कहीं अभिनय तो नहीं कर रही है, और उससे अभिभूत तो नहीं हो गई है। जिन बातों से आजकल उसे प्रसन्नता होती है, वे उन बातों से—जिनका वह स्वप्न लिया करती थी, जिन पर उसकी प्रसन्नता निर्भर प्रतीत होती थी, कितनी भिन्न हैं।....आह, वह वस्तु जिसे हम प्रसन्नता कहते हैं, आत्मा से बहुत भिन्न व पृथक् नहीं है। और वे बाह्य तत्त्व, जो उसके बनाने में सहायक प्रतीत होते हैं, कितने कम महत्त्व के हैं। गारीग के किनारे-किनारे घूमते हुए जो विचार मेरे मन में उठते हैं, वे मैं तुम्हें नहीं लिख रही हूं। पर जिस बात से मुझे सबसे अधिक आश्चर्य होता है, वह यह है कि मैं

अधिक प्रसन्नता अनुभव नहीं करती। ज्यूलिएत् की प्रसन्नता देखकर मेरा मन आनन्द से परिपूर्ण हो जाना चाहिए था....मेरा हृदय अगम्य उदासी में क्योंकर डूब जाता है और इस उदासी को मैं क्यों दूर नहीं कर पाती ? इस देश का सौन्दर्य, जिसे मैं अनुभव करती हूं, जिसे मैं पहचानती हूं, इस व्याख्यातीत उदासी को और अधिक बढ़ा देता है। जब तुम इटली से मुझे पत्र लिखा करते थे, मैं तुम्हारे द्वारा प्रत्येक वस्तु को देख सकती थी। अब मैं अनुभव करती हूं, कि जो कुछ भी मैं तुम्हारे बिना देखती हूं, तुम्हें उससे वंचित रखती हूं। और लहाव्र या फांग्युस्मार में तो मैंने अपने अन्दर वह सामर्थ्य उत्पन्न करलिया था, जिससे वर्षा की मौसम का मुझ पर कोई असर नहीं पड़ता था। यहां यह सामर्थ्य अस्थाने प्रतीत होता है। मैं दुःख के साथ अनुभव करती हूं कि यहां उसका कोई अवसर नहीं है। यह प्रदेश और यहां के लोगों का हास्य मेरे अन्दर व्याकुलता उत्पन्न करता है। शायद जिसे मैं उदासी कहकर पुकारती हूं, वह उनके समान आमोदशील न होना ही है। निःसन्देह, पहले मेरी प्रसन्नता में अभिमान का कुछ अंश मिला हुआ था, क्योंकि अब इस आमोद-प्रमोद के बीच में, जिससे मैं अपरिचित-सी हूं, मैं कुछ तुच्छता-सी अनुभव करती हूं।

"जब से मैं यहां आई हूं, मुश्किल से ही कभी प्रार्थना कर सकी हूं। मुझमें यह मूर्खता की भावना है, कि ईश्वर इस स्थान पर विद्यमान नहीं है। नमस्ते, अब मुझे समाप्त करना चाहिए। मुझे अपनी नास्तिकता पर, अपनी कमजोरी पर, अपनी उदासी पर, उन्हें तुम्हारे सामने स्वीकार कर लेने पर और ये सब तुम्हें लिख देने पर लज्जा आती है। यदि मैं इस पत्र को आज रात डाक में नहीं डाल दूंगी, तो कल सुबह अवश्य फाड़ दूंगी...."

अगले पत्र में अलीसा ने केवल अपनी भान्जी के जन्म का जिक्र किया था। उसे उसकी धर्ममाता (मारेन या गाड मदर) बनना था। पत्र में उसने अपने मामा और ज्यूलिएत् की प्रसन्नता का तो उल्लेख किया

था, पर उसकी इस विषय में क्या अनुभूति थी, इसका तो कोई निर्देश उसमें था ही नहीं ।

तब फिर फांग्युस्मार से भेजे हुए पत्र थे, जहां ज्यूलिएत् उसके पास रहने के लिए जुलाई में आई थी ।

"एदुआर और ज्यूलिएत् आज सुबह यहां से चले गये । मुझे सबसे अधिक दुःख अपनी छोटी भाञ्जी के चले जाने का है । जब छः महीने बाद मैं उसे फिर देखूंगी, तब उसके प्रत्येक हाव-भाव को मैं नहीं पहचान सकूंगी । अब तक उसका कोई भाव मुश्किल से ही ऐसा होगा, जिसका आविष्कार करते हुए उसे मैंने न देखा हो । निर्माण हमेशा इतना रहस्यमय और आश्चर्यजनक होता है, कि ध्यान न देने के कारण ही हम बहुधा उससे चमत्कृत हुए बिना रह जाते हैं । उस छोटे पालने पर झुके-झुके मैंने कितने ही घण्टे बिता दिये हैं, जहां इतनी आशाएं केन्द्रित हैं । वह कैसा अहंकार है, तृप्ति की कैसी भावना है, आत्मोन्नति की भूख की वह कैसी कमी है, जिसके कारण विकास इतनी जल्दी रुक जाता है, और प्रत्येक प्राणी ईश्वर से इतनी दूर रह जाता है । आह, यदि हम उसके पास तक पहुंच सकें, और पहुंचने की इच्छा करें....यह कैसी उत्कृष्टता होगी !

"ज्यूलिएत् बहुत प्रसन्न प्रतीत होती है । पहलेपहल मुझे यह देखकर दुःख हुआ, कि उसने पियानो बजाना और पढ़ना छोड़ दिया है । पर एदुआर तिसिए को संगीत अच्छा नहीं लगता और पुस्तकों में भी उसे अधिक रुचि नहीं है । निःसन्देह ज्यूलिएत् का यह कार्य बुद्धिमत्ता-पूर्ण है, कि वह अपना आमोद-प्रमोद उस बात में नहीं खोजती, जहां वह उसका साथ नहीं दे सकता । दूसरी ओर वह अपने पति के व्यवसाय में दिलचस्पी लेती है, और वह उसे अपने व्यापार के सम्बन्ध में सब बातें बताता है । उसका व्यापार इस साल बहुत उन्नति कर गया है, और उसे यह कहने में बहुत प्रसन्नता होती है, कि यह सब उन्नति इस विवाह के कारण है, जिसने ल्हाव्र में उसे बहुत से महत्त्वपूर्ण ग्राहक जुटाये हैं । जब वह पिछली बार अपनी व्यापार-सम्बन्धी यात्रा

पर गया था, तो रावेअर भी उसके साथ गया था। एदुआर उसके प्रति बहुत कृपालु है। उसका दावा है, कि वह उसके चरित्र को समझता है और यह देखकर कि उसका मन इस प्रकार के काम में लगता है उसमें आशा का संचार होता है।

"पिताजी अब पहले से बहुत अच्छे हैं, उनकी बेटी की प्रसन्नता के दृश्य ने उन्हें फिर नवयुवक बना दिया है। वे अब फिर खेत और बगीचे में रुचि दिखाने लगे हैं, और कुछ समय हुआ, उन्होंने मुझसे कहा है, कि मैं फिर उस पुस्तक को ऊंचे स्वर से सुनाना शुरू करूं, जिसका पढ़ना हमने कुमारी ऐशवर्टन के साथ शुरू किया था और जो तिसिए के आगमन के कारण बीच में ही रुक गया था। मैं उनको बैरन हुबनर की यात्राएं पढ़कर सुना रही हूं, और वे मुझे स्वयं भी बहुत अच्छी लगती हैं। अब मुझे अपने निजी अध्ययन के लिए भी अधिक समय मिलेगा। पर मैं तुम्हारी सलाह चाहती हूं। आज सुबह मैंने एक-एक करके कई पुस्तकें निकालीं, पर किसी के लिए भी मेरी रुचि नहीं हुई।"

इसके बाद से अलीसा के पत्र अधिक विपन्न और अधिक आग्रहपूर्ण होते गये।

"तुम्हें दुःखी करने का विचार मुझे तुम्हें यह लिखने से रोकता है, कि मुझे तुम्हारी कितनी अधिक आवश्यकता है" उसने गर्मियों के अन्त में लिखा था "तुम्हारे मिलन तक मेरा जो भी दिन बीत रहा है, वह मुझे भारी जान पड़ता है और मुझे उदासी से भर देता है। अभी दो महीने और हैं। जो समय अभी तुम्हारे वियोग में बीतना है, वह उससे कहीं अधिक लम्बा प्रतीत होता है, जो कि तुम्हारे बिना मैं बिता चुकी हूं। वक्त काटने के लिए मैं जो भी काम उठाती हूं, वही मुझे भारी जान पड़ता है। मैं अपने को किसी भी काम में लगा नहीं पाती हूं। पुस्तकों में कोई भी रुचि या कोई भी आकर्षण नहीं प्रतीत होता, घूमने में कोई आनन्द नहीं रहा, प्रकृति का सारा सौन्दर्य नष्ट हो गया, बगीचे में न रंग है और न खुशबू।

तुम्हें जो अनिवार्य रूप से कवायद करनी होती है, थका देनेवाला श्रम करना होता है, उससे मुझे ईर्ष्या होती है। इस कवायद और श्रम के कारण तुम अपने में व्यवस्थित रहते हो, खूब श्रान्त हो जाते हो, और तुम्हारा दिन जल्दी से कट जाता है। इनके कारण रात को तुम्हारा थका-मांदा शरीर एकदम सो जाता है। सैनिक गतिविधि का जो हृदय-स्पर्शी वर्णन तुमने मुझे लिखा है, वह मेरी आंखों के सामने घूमता रहता है। पिछली कई रातों से मुझे अच्छी तरह नींद नहीं आई है, और कई बार मैं 'उठो, जागो' की ध्वनि करनेवाले बिगुल सुनकर जाग उठी हूं..... मैंने उनको सचमुच ही सुना था। सुबह का वह आनन्ददायक समय, मस्तिष्क का वह हल्कापन और इन सबके मादक प्रभाव के विषय में जो कुछ तुम लिखते हो, उसकी मैं अच्छी तरह कल्पना कर सकती हूं.....माल्जविल का पथार प्रातः की बर्फीली चमक में कितना सुन्दर दिखाई देता होगा।

"पिछले कुछ दिनों से मेरी तबियत कुछ ठीक नहीं है, कोई विशेष बात नहीं है। मेरा विचार है, शायद मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कुछ अधिक कर रही हूं।"

और छः सप्ताह पश्चात्——

"मेरे मित्र, यह मेरा अन्तिम पत्र है। तुम्हारी वापसी की तारीख कितनी ही अनिश्चित क्यों न हो, वह अब ज्यादा नहीं टल सकती। अब मैं और अधिक नहीं लिख सकूंगी। मुझे बड़ी प्रसन्नता होती, यदि हमारा मिलन फांग्युस्मार में होता। पर मौसम बदल गई है, और यहां बहुत अधिक ठण्ड पड़ने लगी है। पिताजी शहर लौट जाने के अतिरिक्त और कोई बात ही नहीं करते हैं। अब क्योंकि ज्यूलिएत् और राबेअर हमारे पास नहीं रहते, हम आसानी से तुम्हें अपने पास रख सकते थे। पर यदि तुम मौसी फेलिसी के पास ठहरो, तो ज्यादा उचित होगा। उसे भी तुम्हारे आने से बहुत प्रसन्नता होगी।

"जैसे-जैसे हमारे मिलन का दिन पास आता जाता है, मैं बढ़ती हुई चिन्ता से, प्रायः आशंका के भाव से उसकी प्रतीक्षा कर रही हूं। तुम्हारे जिस आगमन के लिए मैं इतनी उत्कण्ठित थी, अब मुझे उससे भय-सा प्रतीत होता है। मैं उसके विषय में कुछ न सोचने का प्रयत्न करती हूं, मैं कल्पना करती हूं कि तुमने दरवाजे की घण्टी बजाई, सीढ़ी पर तुम्हारी पदचाप सुनाई दी, और मेरा हृदय धड़कना बन्द हो गया, या दुखने लगा. . . .और तुम कुछ भी करो, मुझसे यह आशा मत करना कि मैं तुमसे बातें कर सकूंगी। मुझे प्रतीत होता है कि मेरे भूतकाल का यहां अन्त हो जाता है, और आगे मुझे कुछ भी नहीं सूझता, यहां मेरा जीवन-प्रवाह रुक जाता है. . . ."

चार दिन बाद——अर्थात् मेरे सैनिक सेवा से छूटने से एक हफ्ता पहले—मुझे एक और पत्र मिला जो बहुत छोटा सा था——

"मेरे मित्र! तुमने जो यह निश्चय किया है, कि तुम लहाव्र में अपने निवासकाल को अधिक लम्बा नहीं कर सकोगे, और हमारे प्रथम मिलन का जो समय तुमने प्रस्तावित किया है, उसका मैं हृदय से समर्थन करती हूं। ऐसी कौन-सी बात है, जिसे हम पहले एक दूसरे को न लिख चुके हों और जिसे हम अब बातचीत में कहना चाहेंगे? अतः यदि परीक्षा-सम्बन्धी कार्यवश तुम्हें २८ तारीख को ही पेरिस लौट जाना पड़े तो संकोच मत करना। इस बात पर दुःखी मत होना, कि तुम हमें दो दिन से अधिक न दे सके। क्या हमारे सामने सारा जीवन नहीं पड़ा है?"

छठवां अध्याय

हमारी पहली मुलाकात मौसी प्लांतिए के घर पर हुई। अकस्मात् मैंने अनुभव किया, कि सैनिक सेवा ने मुझे बोझल और डल बना दिया है....। बाद में मुझे ख्याल आया, कि उसने सोचा होगा कि मैं बदल गया हूं। पर शुरू-शुरू के इस ख्याल का, जो कि सही नहीं था, हम दोनों के लिए कोई भी महत्त्व क्यों हो ? जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मुझे इस बात का बहुत भय था कि जिस अलीसा को मैं जानता था, उसे मैं शायद पहचान भी न सकूं। इसीलिए पहलेपहल तो मैं उसकी ओर देख भी न सका। नहीं ! असल में जो बात हमें घबराहट में डालनेवाली थी, वह सगाई हो जाने की भद्दी स्थिति थी, जिसे उन सबने हमारे ऊपर जबर्दस्ती लाद दिया था। प्रत्येक व्यक्ति इस बात के लिए उत्सुक था कि जब हम दोनों साथ हों, तो हमें अकेला छोड़ दें और हमारे पास से चले जावें।

"पर, मौसीजी, तुम हमारे लिए जरा भी बाधक नहीं हो, हमें एक दूसरे से कोई गुप्त बात नहीं कहनी है" आखिरकार अलीसा चिल्लाकर बोली, क्योंकि वह देवी अपने आपको वहां से दूर ले जाने के प्रयत्न में अधीर हो रही थीं।

"ठीक है ! ठीक है ! मेरे बच्चो ! मैं खूब समझती हूं। जब एक दूसरे से मिले बहुत दिन हो जाते हैं, तो कितनी ही छोटी-छोटी बातें उन्हें आपस में कहनी होती हैं।"

"मौसीजी, मैं आपसे प्रार्थना करती हूं, अगर आप चली गईं तो हम सचमुच नाराज हो जायंगे।" यह बात एक ऐसे स्वर में कही गई थी, जो सचमुच क्रोध से पूर्ण था और अलीसा का वह स्वर मेरे लिए सर्वथा अपरिचित था।

"मौसीजी, मैं आपको निश्चय दिलाता हूं, कि यदि आप चली गइ, तो हम आपस में एक भी बात नहीं करेंगे।" मैंने हंसते हुए अपनी ओर से भी कह दिया। पर हमारे अकेले छूटने के विचार से ही मेरा हृदय एक विशेष आशंका से पूर्ण हो गया, और तब दिखावटी प्रसन्नता के साथ, हम तीनों बातचीत करने का प्रयत्न करने लगे। मामूली शिष्टाचार की बातों से जबर्दस्ती लाई हुई सजीवता के परदे में हम अपने संकोच को छिपाने का प्रयत्न कर रहे थे। अगले दिन फिर हमारी भेंट होनेवाली थी, क्योंकि मामाजी ने मुझे दोपहर को खाना खाने का न्योता दिया था, अतः उस शाम को हम बिना किसी खेद के बिदा हुए। हमें खुशी थी कि उस अशोभन दृश्य का अन्त तो हुआ।

मैं खाने के समय से बहुत पहले वहां पहुंच गया था, पर मैंने अलीसा को एक सहेली से बात करते पाया, जिसे बिदा कर देने की शक्ति उसमें नहीं थी। जब आखिरकार वह चली गई, तो मैंने इस बात पर आश्चर्यित होने का बहाना किया, कि अलीसा ने उसे खाने के लिए क्यों न रोक लिया। हम दोनों स्नायविक तनाव की अवस्था में थे और निद्रारहित रात्रि बिताने के कारण थके हुए थे। मामाजी आये। अलीसा ने अनुभव किया कि मेरे विचार से वे बूढ़े हो गये थे। वे कुछ ऊंचा सुनने लगे थे, और मेरी आवाज मुश्किल से सुन पाते थे। इस बात की आवश्यकता ने, कि मैं जोर से बोलूं जिससे वे मेरी बात सुन सकें, मेरी बातचीत को निर्जीव कर दिया।

योजना के अनुसार खाने के बाद मौसी प्लांतिए हमको अपनी गाड़ी में बाहर ले जाने के लिए आईं, और हमको ऑर्शे तक ले गईं। उनका यह विचार था, कि वहां मुझे और अलीसा को अकेला छोड़ देंगी, और वापसी में हम दोनों रास्ते का सुन्दरतम भाग पैदल चलकर आवेंगे।

मौसम के लिहाज से उस समय गर्मी बहुत अधिक थी। पहाड़ी के उस भाग में, जहां हम पैदल चल रहे थे, खुली धूप पड़ रही थी और कोई रौनक भी न थी। पेड़ पत्तों से रहित थे, अतः कहीं छाया भी न थी। हमें

उस जगह शीघ्र पहुंचने की चिन्ता थी, जहां मौसी गाड़ी लिये हमारा इन्तजार कर रही थीं। इसलिए हमने कुछ बे-आरामी के साथ अपने कदम बढ़ाने शुरू किये। मेरे सिर में इतना अधिक दर्द था, कि मैं कुछ सोच भी नहीं सकता था। फिर भी अपने मनोभाव को स्थिर रखने के लिए या शायद यह सोचकर कि संकेत भी वाणी का स्थान ले सकता है, मैंने अलीसा का हाथ पकड़ लिया, जिसको उसने छुड़ाया नहीं। हमारे भावावेग, हमारे चलने की शीघ्रता और हमारे कष्टदायक मौन के कारण हमारे मुंह लाल हो गये। मैंने अनुभव किया, कि मेरी कनपटियां फड़क रही थीं, और अलीसा का रंग भी कष्टप्रद रूप से गाढ़ा हो गया था। हम दोनों के हाथ गीले हो गये थे, और उनका स्पर्श सुखदायक नहीं रहा था। हमने एक दूसरे का हाथ छोड़ दिया, और वे हमारी बगलों में उदास ढंग से लटक गये।

हमने बहुत जल्दी की, और गाड़ी पहुंचने से बहुत पहले ही हम चौराहे पर आ गये, क्योंकि वह एक लम्बे रास्ते से धीरे-धीरे आ रही थी। हमको बातचीत के लिए बहुत-सा समय देने की मौसीजी की इच्छा इसका कारण थी। हम सड़क के किनारे पुल पर बैठ गये। अकस्मात् ठण्डी हवा जोर से चलने लगी, जिससे हमारी हड्डियां तक कांप गईं। हम गाड़ी तक पहुंचने के लिए तेजी से चले थे, अतः हमारे शरीर पसीने से तर थे। पर सबसे अधिक दुःखदायी मौसीजी की हठभरी उत्सुकता थी। उन्हें निश्चय था, कि हमने मन भरकर काफी बातें कर ली हैं, अतः वह हमारी सगाई के विषय में हमसे पूछ-ताछ करने को बेहद उत्सुक थीं। अलीसा इसे सहन न कर सकी, उसकी आंखों में आंसू भर आये। उसने कहा, कि उसे बड़ी जोर का सिरदर्द है। हम सब चुपचाप घर पहुंच गये।

अगले दिन सुबह जब मैं सोकर उठा, तो मेरा अंग-अंग दुख रहा था और मुझे सख्त सर्दी चढ़ गई थी। मेरी तबियत इतनी अधिक खराब थी, कि तीसरे पहर तक मैं बुकोलां के घर जाने लायक न हो सका। बदकिस्मती से तब भी अलीसा अकेली न थी। मौसी फेलिसी की एक पोती मादलेन्

प्लांतिए वहां मौजूद थी। मैं जानता था कि अलीसा को उससे बातें करना बहुत पसन्द था। वह कुछ दिनों के लिए अपनी दादी के पास आई हुई थी। जब मैं अन्दर आया तो वह बोली—

"यहां से बिदा होकर यदि तुम कोन् वापस जा रहे हो, तो हम इकट्ठे चले चलेंगे।"

मैं एक मशीन के समान राजी हो गया। परिणाम यह हुआ, कि मैं अलीसा से अकेले में न मिल सका। पर निःसन्देह, उस मोहिनी स्वभाव की लड़की की उपस्थिति हमारे लिये सहायक सिद्ध हुई। कल का असह्य संकोच अब मेरे अन्दर नहीं रहा। हम तीनों में बातचीत आसानी से होने लगी, और जितना मुझे भय था, यह बातचीत उतनी व्यर्थ भी नहीं रही। जब मैंने अलीसा को बिदाई का नमस्कार किया, तो वह अजीब तरीके से मुस्कराई। मेरा विचार था, कि वह उस क्षण तक यह नहीं समझती थी, कि मैं सचमुच ही अगले दिन सुबह चला जा रहा था। पर मुझे आशा थी, कि मैं शीघ्र ही वापस लौट आऊंगा, अतः उस अन्तिम नमस्कार में दुःख का कोई स्पर्श न था।

रात को भोजन के बाद, एक अस्पप्ट प्रकार की व्याकुलता मेरे हृदय में भर गई। उससे प्रेरित होकर मैं शहर की ओर चल पड़ा। वहां घण्टा भर तक इधर-उधर घूमते रहने के बाद मैंने बुकोलों का दरवाजा खटखटाने का निश्चय किया। मामाजी ने मेरे लिए दरवाजा खोला। अलीसा की तबियत ठीक नहीं थी, अतः वह अपने कमरे में जा चुकी थी और निःसन्देह उसी समय विस्तरे पर लेट भी गई थी। मैं कुछ देर मामाजी से बातें करता रहा, और फिर चला आया।

यद्यपि ये सब घटनाएं बहुत कष्टदायक थीं, पर इनके लिए किसी को दोषी ठहराना व्यर्थ है। क्योंकि यदि हरेक बात हमारे अनुकूल होती तो भी हमारा संकोच स्वयं बाधक बनकर हमारे सम्मुख खड़ा हो ही जाता। पर मुझे किसी बात से इतना दुःख नहीं हुआ, जितना इस तथ्य से कि

अलीसा ने भी इसे अनुभव किया। जैसे ही मैं पेरिस पहुंचा, मुझे यह पत्र मिला—

"मेरे मित्र ! हमारी मुलाकात कैसी उदासी से पूर्ण थी ! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम इसके लिए दूसरों को दोष देते थे, यद्यपि तुम्हें स्वयं इसका विश्वास नहीं था। और अब मैं सोचती हूं—मैं जानती हूं—यह हमेशा ऐसा ही रहेगा। आह ! मैं तुमसे प्रार्थना करती हूं, कि अब हम एक दूसरे से कभी न मिलें।

"जब हमारे पास दुनिया भर की बातें एक दूसरे से कहने के लिए हैं, तो यह बैचेनी क्यों है ? प्रतिकूल परिस्थिति में होने की सी यह अनुभूति क्यों है ? यह निर्बलता क्यों है ? और यह मौन क्यों है ? तुम्हारी वापसी के पहले दिन इस मौन के कारण मैं प्रसन्न थी, क्योंकि मुझे विश्वास था, कि उसका अन्त हो जायगा और तुम मुझे बहुत सी आश्चर्यभरी बातें सुनाओगे,। तुम उन्हें कहे बिना यहां से जा ही नहीं सकते थे।

"पर जब हमारी आँखों की उदासी भरी यात्रा एक शब्द भी बोले बिना समाप्त हो गई और बाद में जब हम दोनों के हाथ भी एक दूसरे से अलग होकर निराश रूप से नीचे गिर गये, तो मुझे ऐसा लगता था कि मेरा हृदय शोक और पीड़ा से अन्दर ही अन्दर फट जायगा। जिस बात से मुझे सबसे अधिक दुःख हुआ, वह यह नहीं थी कि तुमने मेरा हाथ छोड़ दिया। पर यह अनुभूति थी कि यदि तुम मेरा हाथ न छोड़ देते तो वह स्वयं अलग हो जाता, क्योंकि मेरा हाथ अब तुम्हारे हाथ में सुखी अनुभव नहीं कर रहा था।

"अगले दिन—यानी कल—सारी सुबह मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करती रही, और मेरी यह प्रतीक्षा पागलपन की सीमा तक पहुंच गई थी। मैं इतनी अशान्त थी, कि घर के अन्दर न ठहर सकी और तुम्हें यह बताने के लिए एक पंक्ति लिखकर रख गई कि मैं तुम्हें समुद्र के किनारे पर मिलूंगी। मैं तूफानी समुद्र की ओर देखती हुई बड़ी देर तक बैठी रही, पर तुम्हारे बिना उसे देखने

में मेरा मन बहुत उदास हुआ। अकस्मात् मुझे विचार आया, कि तुम मेरे कमरे में मेरी प्रतीक्षा कर रहे हो और मैं लौट आई। मैं जानती थी कि दोपहर पीछे मैं खाली न हूंगी। मादलेन् ने मुझसे पहले ही रोज कह दिया था, कि वह मेरे पास आना चाहती है और क्योंकि मुझे तुमसे सुबह ही मिल लेने की आशा थी, इसलिए मैंने उसे मना नहीं किया था। पर शायद उसी की उपस्थिति के कारण हमारे उस मिलन के एकमात्र सुखद क्षण बीते। कुछ मिनटों के लिए मुझे अजीब-सा भ्रम हुआ कि यह आनन्ददायक बातचीत बहुत देर तक, सुदीर्घ काल तक चलती रहेगी। और जिस सोफा पर मैं उसके साथ बैठी थी, जब तुम उसके पास आकर नीचे झुके, और मुझसे बिदा लेते हुए नमस्कार कहा, तो मैं उत्तर नहीं दे सकी। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, कि अब सब समाप्त हो गया है। तब अकस्मात मुझे समझ में आया कि तुम सचमुच जा रहे हो।

"ज्यों हीं तुम मादलेन् के साथ बाहर गये, मुझे अनुभव हुआ, कि यह बात असम्भव है, सर्वथा असह्य है। क्या तुम जानते हो, कि मैं तुरन्त बाहर निकल आई थी! मैं तुमसे बातें करना चाहती थीं, वे सब बातें तुम्हें बता देना चाहती थी, जो अब तक 'तुम्हें नहीं कही थीं। मैं प्लांतिए के घर की ओर तेजी से चली....पर देरी हो चुकी थी, न समय था और न मेरे अन्दर हिम्मत.....मैं घर लौट आई। मैं तुम्हें पत्र लिखने के लिए पागल-सी हो रही थी, एक बिदा का पत्र, तुम्हें वह सब कुछ लिखने के लिए, जो अब मैं तुम्हें नहीं लिखना चाहती, क्योंकि अन्त में मैंने जोरों से अनुभव किया कि हमारा पत्र-व्यवहार, वे सब पत्र जो हम एक दूसरे को लिखा करते थे, एक महती मृगतृष्णा के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं था। जरोम, जरोम, हाय, उस सारे समय में हम एक दूसरे से कितने अधिक दूर थे।

"यह सच है, कि मैंने उस पत्र को फाड़ दिया था, पर अब मैं उसको प्रायः ठीक वैसा ही दुबारा लिख रही हूं। हाय मेरे मित्र! मैं तुम्हें अब भी कम प्यार नहीं करती। इसके विपरीत, मैंने पहले कभी इतना स्पष्ट

अनुभव नहीं किया, कि मैं तुम्हें कितना अधिक प्यार करती हूं। जब तुम मेरे समीप आते थे, तब मुझे जो घबराहट और संकोच अनुभव होते थे, वे उसके द्योतक हैं। और मुझे यह बात जबरन स्वीकार करनी पड़ेगी, कि जब तुम दूर होते हो तो मैं तुम्हें और भी अधिक प्यार करती हूं। पहले भी मेरा कुछ ऐसा ख्याल था, पर इस चिरप्रतीक्षित मुलाकात ने तो इसी सचाई को बहुत अधिक स्पष्ट कर दिया। और मेरे मित्र, तुम्हें भी अब इस भांति का विश्वास हो गया होगा। नमस्कार, मेरे परम प्रिय भाई, ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे और तुम्हें पथ-प्रदर्शन करे। केवल उसी के पार्श्व में पहुंच कर हम दुष्परिणामों से बच सकते हैं।"

जैसे यह पत्र काफी पीड़ादायक नहीं था, अगले दिन उसने निम्न-लिखित अंश और जोड़ दिया--

"मैं यह नहीं चाहती, कि यह पत्र जाय और मैं तुमसे यह न कहूं कि कृपा करके जो बातें सिर्फ हम दोनों के सम्बन्ध की हैं, उनमें तुम अधिक विवेक प्रदर्शित किया करो। जो बातें केवल मेरे और तुम्हारे बीच में ही रहनी चाहिए थीं, उनके विषय में ज्यूलिएत् और आबेल से बात करके तुमने मुझे कई बार चोट पहुंचाई है, और वास्तव में यही बात है, जिससे मेरे मन में यह विचार पैदा हुआ--तुम्हारे इस विषय में कोई भी सन्देह करने से बहुत पहले--कि तुम्हारा प्रेम केवल मस्तिष्क का है, उसका सम्बन्ध केवल बुद्धि से है, जिसके साथ मृदुता और परायणता मिली हुई है।"

कहीं मैं यह पत्र आबेल को न दिखा दूं, इस भय ने निःसन्देह अन्तिम पंक्तियां लिखने के लिए उसे प्रेरित किया था। किस संशयालु सहजबुद्धि ने उसे सावधान किया था? क्या पहले भी वह मेरे शब्दों में मेरे मित्र की सम्मति का प्रतिबिम्ब देखने में समर्थ हुई थी?

सच तो यह है कि मैं अपने को अब आबेल से बहुत दूर अनुभव करता था। अब हम दो विभिन्न मार्गों का अनुसरण कर रहे थे, और अब मुझे

यह सीख देने की कोई आवश्यकता नहीं थी, कि अपने दुःख का चिन्तापूर्ण बोझ मुझे अकेले ही संवहन करना चाहिए। मेरे अगले तीन दिन पूरी तरह से उद्वेग में ही बीते। मैं अलीसा को उत्तर देना चाहता था। पर मुझे भय था, कि यदि मैं अधिक विशदरूप से विचार-विमर्श करूंगा, या बहुत अधिक आवेश में अपनी बात प्रतिपादित करूंगा, या यदि कोई साधारण-सा भी अनुचित शब्द प्रयुक्त कर दूंगा, तो हमारा जखम इतना बढ़ जायगा, कि वह लाइलाज हो जायगा। मैंने बीस बार उस पत्र को प्रारम्भ किया, जिसमें मेरा प्रेम जीवित रहने के लिए संघर्ष कर रहा था। मैं आज भी आंसुओं से चिन्हित उस कागज को बिना रोये नहीं पढ़ सकता, जो उस पत्र की नकल है, जिसे मैंने आखिरकार भेजने का निश्चय किया था—

"अलीसा ! मुझ पर, हम दोनों पर दया करो। तुम्हारे पत्र से मुझे चोट पहुंचती है। मैं कितना चाहता हूं कि तुम्हारी आशंका को हंसकर उड़ा दूं ! हां, जो कुछ तुम लिखती हो, उसकी अनुभूति मुझे भी हुई थी, पर उसे स्वयं स्वीकार करते हुए मुझे भय लगता था। जो बात केवल, कल्पनात्मक है, उसे तुम कैसी भयंकर वास्तविकता का रूप देती हो, और तुम उसे कितना बढ़ाती जाती हो।

"अगर तुम्हारा ख्याल है, कि तुम मुझे कम प्यार करती हो....आह, इस निर्दयतापूर्ण संशयों को दूर ही रहने दो, तुम्हारा सम्पूर्ण पत्र उसका विरोध करता है ! परन्तु उस अवस्था में तुम्हारे उड़ते हुए सन्देहों का महत्त्व ही क्या है ? अलीसा, जैसे ही मैं विवेचन प्रारम्भ करता हूं, मुझे शब्द नहीं सूझते, मुझे केवल अपने हृदय का रुदन ही सुनाई देता है। मैं तुम्हें इतना प्यार करता हूं कि उसके लिए मुझमें कौशल रह ही नहीं जाता ! जितना अधिक मैं तुम्हें प्यार करता हूं, उतना ही कम मैं यह समझ पाता हूं कि तुमसे क्या बात करूं। 'मस्तिष्क का प्रेम'. . . .इसका मैं क्या उत्तर दूं ? जब मैं अपनी सम्पूर्ण आत्मा से तुम्हें प्यार करता हूं, तब मैं अपने मस्तिष्क और हृदय में भेद कैसे कर सकता हूं ? पर जब हमारा पत्र-व्यवहार तुम्हारे

निर्दय धिक्कार का कारण है, हमारे पत्र-व्यवहार ने हमें जिस ऊंचाई तक पहुंचा दिया था, अब उससे गिरकर वास्तविकता तक पहुंच जाने में जब हमें इतनी जबर्दस्त चोट लगी है, और जब तुम अब यह समझती हो, कि तुम्हारा मुझे लिखना तुम्हें अपने आपको ही लिखना है, और जब कि मेरे अन्दर इतनी शक्ति नहीं है, कि तुम्हारे अन्तिम पत्र-जैसे एक और पत्र को सहन कर सकूं, तो अच्छा है कि हम कुछ समय के लिए सब पत्र-व्यवहार समाप्त ही कर दें।"

पत्र के शेष भाग में उसके निर्णय के विरुद्ध नाराजगी जाहिर करते हुए मैंने उससे अपील की, और उससे प्रार्थना की कि वह हमें परस्पर मिलन का एक मौका और दे। हमारी जो आखिरी मुलाकात हुई थी, परिस्थिति, अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति और समय—सब उसके प्रतिकूल थे; यहां तक कि हमारा पत्र-व्यवहार भी, जिसकी आवेशमय शैली ने हमें इतनी कम समझदारी से उसके लिए तैयार किया था। मेरी इच्छा थी, कि इस बार की मुलाकात से पहले हम मौन रहें, और यह मुलाकात वसन्त में फांग्युसमार में हो। 'वहां ईस्टर की छुट्टियों में मामाजी मुझे ठहरने देंगे, मैं ठीक उतने दिन रहूंगा, जितना अलीसा मुनासिब समझेगी, न कम न ज्यादा।

मेरा संकल्प इतना दृढ था, कि इस पत्र को भेजते ही मैं अपने कार्य में दत्तचित हो गया।

× × × ×

साल समाप्त होने से पहले एक बार और मुझे अलीसा से मिलना पड़ा। कुमारी ऐशबर्टन का स्वास्थ्य पिछले कुछ महीने से गिरता चला आ रहा था, क्रिसमस से चार दिन पहले उनकी मृत्यु हो गई। सैनिक सेवा से मुक्त होकर मैं उन्हीं के पास रहा करता था। मैं उनको बहुत कम अकेले छोड़ता था और उनके अन्तिम क्षणों में उनके पास उपस्थित था। अलीसा के एक पत्र से प्रकट हुआ कि मौन के हमारे व्रत ने उसके हृदय पर मेरी इस शोकपूर्ण क्षति की अपेक्षा भी अधिक असर डाला

था। उसने लिखा था, कि वह एक दिन के लिए मृतक संस्कार में शामिल होने के लिए आ रही है, पर मामाजी उसमें शामिल न हो सकेंगे।

मृतक-प्रार्थना में उपस्थित होनेवाले केवल दो ही व्यक्ति थे, मैं और वह। अर्थी के पीछे भी केवल हमीं दोनों चले। हम अगल-बगल चल रहे थे और मुश्किल से ही हमने आपस में कोई बातचीत की। पर गिरजे में मैंने कई बार अनुभव किया कि उसकी आंखें कोमलता के साथ मेरी ओर देख रही हैं। वहां वह मेरी बगल में बैठी हुई थी।

जब वह मुझसे विदा हुई, तब बोली—"यह तय रहा, ईस्टर से पहले कोई बात नहीं होगी।"

"हां, पर ईस्टर पर...."

"मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगी।"

हम कब्रिस्तान के दरवाजे पर खड़े थे। मैंने कहा कि मैं उसे स्टेशन तक पहुंचा आऊं, पर उसने एक गाड़ी बुला ली, और बिदा का एक शब्द भी कहे बिना वह मुझे छोड़कर चली गई।

सातवां अध्याय

एप्रिल के अन्त में जब मैं फांग्युस्मार पहुंचा, तो मामाजी ने मुझे वात्सल्यपूर्वक गले लगाया और फिर बाले—"अलीसा बगीचे में तुम्हारा इन्तजार कर रही है ।" यद्यपि शुरू में मुझे इस बात का भ्रम था कि वह मुझसे मिलने को तैयार नहीं है, पर अगले ही क्षण मैं इस बात के लिए कृतज्ञ हुआ, कि उसने हम दोनों को मुलाकात के प्रारम्भ की निरर्थक भावावेशपूर्ण बातों से बचा लिया था ।

वह बगीचे के सिरे पर थी। मैं सीढ़ियों के ऊपरी सिरे की ओर चला। वह स्थान पौदों और झाड़ियों से अच्छी तरह से घिरा हुआ था, साल के इन दिनों में ये झाड़ियां फूलों से लदी हुई थीं। मैं उसे दूर से नहीं देखना चाहता था, और न ही यह चाहता था कि वह मुझे दूर से आता हुआ देखे। बगीचे के दूसरे ओर से मैं छायादार रास्ते से चला। वहां वृक्षों की शाखाओं के नीचे ठण्डी-ठण्डी हवा आ रही थी। मैं धीरे-धीरे आगे बढ़ा, आसमान भी मेरे आनन्द के समान ही गरम, उज्ज्वल और नजाकत के साथ पवित्र था। निःसन्देह वह दूसरे रास्ते पर मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। इससे पहले कि वह मेरी आहट सुन सके, मैं उसके नजदीक, उसके बिलकुल पीछे पहुंच गया था। मैं रुक गया....और मानो समय भी मेरे साथ ही रुक गया। मैंने सोचा "यही क्षण है, सम्भवतः सबसे अधिक आनन्ददायक क्षण, यद्यपि यह प्रत्यक्ष प्रसन्नता के पहले घटित हो रहा है—पर स्वयं प्रसन्नता भी इसका मुकाबला नहीं कर सकती ।"

मैं उसके सामने घुटनों के बल झुक जाना चाहता था। मैं एक कदम आगे बढ़ा, जिसे उसने जान लिया। वह अकस्मात् उठ खड़ी हुई, और जिस

कढ़ाई के काम को वह कर रही थी, वह जमीन पर गिर गया। उसने अपनी बांहें मेरी ओर फैला दीं, अपने हाथ मेरे कन्धों पर टेक दिये। हम कुछ क्षणों तक वैसे ही खड़े रहे—उसकी बांहें फैली हुई थीं, उसका चेहरा मुस्करा रहा था और मेरी ओर झुका हुआ था। वह बिना कुछ बोले ही मेरी ओर कोमलता और प्यार के साथ देख रही थी। उसने सफेद कपड़े पहन रखे थे। उसका मुख बहुत गम्भीर था, पर मुझे उस पर उसके बचपन की मुस्कान खेलती दिखाई देती थी।

अकस्मात् मैं जोर देकर बोल उठा—"अलीसा सुनो! मेरे पास बारह दिन हैं। जितना तुम चाहोगी मैं उससे एक दिन भी अधिक नहीं ठहरूंगा। आओ, हम एक चिन्ह निश्चित कर लें, जिसका अभिप्राय होगा 'कल तुम्हें फांग्युस्मार से चले जाना है। अगले दिन मैं बिना कोई दोष दिये बिना किसी शिकायत के चला जाऊंगा। क्या तुम सहमत हो?' क्या बात करनी है, यह पहले से मैंने नहीं सोच रखा था, इसलिए मैं अधिक सुगमता से बात कर सका। वह क्षण भर सोचती रही, तब बोली—

"जिस दिन शाम को मैं एमेथिस्ट के बने हुए क्रास को पहने बिना खाना खाने आऊंगी, जो क्रास तुम्हें बहुत पसन्द है. . . .क्या तुम समझ जाओगे?"

"कि यह मेरी अन्तिम सायंकाल है!"

"पर क्या तुम बिना आंसू गिराये या बिना आह निकाले जा सकोगे?"

"बिना अन्तिम नमस्कार किये। मैं उस आखिरी शाम को भी तुम्हारे पास से ठीक वैसे ही चला जाऊंगा, जैसे उससे पहली शाम को गया था, इतनी सरलता के साथ कि तुम आश्चर्य करोगी, कि मैं तुम्हारी बात समझ पाया या नहीं। पर जब अगले दिन सुबह तुम मुझे खोजोगी, तो मैं नहीं मिलूंगा।

"मैं अगले दिन सुबह तुम्हें नहीं खोजूंगी।"

उसने अपना हाथ बढ़ाया, मैंने उसे होंठों की ओर बढ़ाते हुए कहा—

"पर अब से लेकर उस सत्यानाशी शाम तक कोई बात ऐसी न कही जाय, जिससे मैं यह अनुभव करूं कि वह समीप आ गई।"

"और तुम उसके बाद आनेवाले वियोग के विषय में एक भी शब्द न कहोगे।"

इस मिलन की गम्भीरता के कारण हमारे बीच जिस दीवार के खड़ा हो जाने का भय था, अब उसे दूर करना था। मैं कहता गया—"मेरी कितनी इच्छा है, कि मेरे अगले कुछ दिन तुम्हारे साथ पहले बीते हुए दूसरे अनेक दिनों के समान प्रतीत हों....मेरा अभिप्राय है, कि हम दोनों में से कोई भी यह अनुभव न करे, कि इनमें कोई खासियत है। और तब....अगर शुरू-शुरू में हमें एक दूसरे से बात करने के लिए बहुत अधिक प्रयत्न करना पड़े..." वह हंसने लगी। मैंने फिर कहा—

"क्या कोई ऐसा काम नहीं है, जिसे हम इकट्ठा कर सकें?" हम दोनों बगीचे के काम को बहुत आनन्द के साथ इकट्ठे किया करते थे। थोड़े दिन हुए, पुराने माली के स्थान में एक नया नातजर्बेकार माली रक्खा गया था, और बगीचे में बहुत कुछ करने को था, जिसकी ओर पिछले दो महीने मे कुछ ध्यान ही नहीं दिया गया था। कुछ गुलाब के पौदे ठीक से कलम नहीं किये गये थे, कुछ खूब सघन और हरे-भरे झाड़ों में सूखी डालियां भरी पड़ी थीं, कुछ लाल गुलाब की बेलें ठीक सहारे के अभाव में गिर पड़ी थीं, कुछ पौदे बेकार की शाखाओं के कारण ठीक बढ़ नहीं पा रहे थे। प्रायः उन सभी की कलम हम दोनों ने इकट्ठे बांधी थी। हमने अपने पौदों को पहचान लिया, जिस परवाह की उन्हें आवश्यकता थी, उसी में हमारा बहुत-सा समय बीत जाने लगा। पहले तीन दिन यद्यपि हमने महत्त्व की कोई बात नहीं की, फिर भी पौदों के विषय में कहने-सुनने की ही बातों की कमी न रही, और जब हम कुछ बात नहीं करते थे, तो केवल इस कारण ही हमारा मौन बोझल नहीं बन जाता था।

इस प्रकार हम फिर एक बार एक दूसरे के लिए अभ्यस्त हुए। इस

परिस्थिति के लिए कोई अन्य कारण ढूंढ़ने की अपेक्षा मैं इस बात को ही अधिक महत्त्व देता था। हमारे वियोग की स्मृति तक भी अब हमारे हृदयों से नष्ट होनी शुरू हो गई थी, और मुझे उसके सामने जो भय प्रतीत होता था, और मेरे मन के जिस तनाव से वह भय खाया करती थी, वह अब कम होना शुरू हो गया था। पतझड़ की मौसम की दुःखद यात्रा के दिनों की अपेक्षा अलीसा अब अधिक युवती दिखाई देती थी और मुझे वह इतनी सुन्दर पहले कभी प्रतीत नहीं हुई थी। मैंने अभी तक उसका चुम्बन नहीं किया था। हर रोज शाम को मैं उसकी बोडिस पर छोटा-सा एमेथिस्ट क्रास चमकता हुआ देखता था, जिसे वह सोने की जंजीर में लटकाकर अपने गले में पहने रखती थी। चुपके-चुपके मेरे हृदय में आशा जगी। मैंने क्या कहा? आशा! नहीं! अब तो यह बात निश्चित हो चुकी थी, और मेरा विचार था, कि यह बात मैंने अलीसा के अन्दर भी अनुभव की; क्योंकि जब मुझे अपने विषय में कोई सन्देह न था तब मैं उसके विषय में सन्देह कैसे कर सकता था। धीरे-धीरे हम अपनी बातचीत में अधिक निःसंकोच होते गये।

एक दिन प्रातःकाल जब हवा में से प्रसन्नता और हंसी-खुशी की सांस आ रही थी और हमारे हृदय फूलों के समान खिल रहे थे, मैंने उससे कहा—"अलीसा, अब जब कि ज्यूलिएत् प्रसन्न है, क्या तुम हमें भी........."

मैं धीरे-धीरे बोल रहा था और मेरी आंखें उसके चेहरे पर जमी हुई थीं। अकस्मात् वह इतनी असाधारण तौर पर सफेद पड़ गई, कि मैं अपना वाक्य समाप्त भी नहीं कर सका।

वह अपनी आंखें मेरी ओर फिराये बिना ही बोली—"मेरे मित्र, मैं तुम्हारे साथ उससे अधिक प्रसन्न हूं, जितना मैं समझती थी कि मैं प्रसन्न हो सकती हूं......पर मेरा विश्वास करो, हम हंसी-खुशी के लिए पैदा नहीं हुए थे।"

मैं बड़ी जोर से चिल्ला उठा–"आत्मा प्रसन्नता की अपेक्षा और क्या पसन्द कर सकती है ?"

"परमार्थ-तत्त्व........" वह इतने धीरे से बोली, कि मैं इन शब्दों को सुन नहीं सका, केवल अन्दाज से समझ सका। मेरी सारी प्रसन्नता ने अपने पंख फैला लिये, और मेरे हृदय से निकलकर आकाश की ओर उड़ गई।

"मैं उस तक तुम्हारे बिना नहीं पहुंच सकता" मैंने अपना सिर उसके घुटनों पर टेक दिया और एक बच्चे के समान रोने लगा। पर यह रुदन प्रेम-रुदन था, न कि शोक-रुदन। मैं बार-बार दोहराने लगा—"तुम्हारे बिना नहीं, तुम्हारे बिना नहीं।"

उसके बाद, वह दिन भी और दिनों के समान ही व्यतीत हो गया। पर शाम को अलीसा उस छोटे-से एमेथिस्ट के आभूषण को पहने बिना नीचे आई। मैंने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। अगले दिन सुबह होने पर मैं वहां से चल पड़ा।

उससे अगले दिन मुझे वह विलक्षण पत्र मिला, जिसे मैं नीचे दे रहा हूं। उस पर शेक्सपियर की निम्नलिखित पंक्तियां लिखी हुई थीं—

फिर वह तान--वह धीरे-धीरे चुप हो गई,
अहा वह मेरे कानों में मीठी दक्खिनी हवा की तरह आई,
जो वायलेट की क्यारियों पर सांस लेती है
सुगन्ध चुराती है और देती है !--बस पर्याप्त, अधिक नहीं,
अब यह उतनी मीठी नहीं है, जितनी कि पहले थी।

"हां ! मेरे भाई ! अपनी आत्मा के बावजूद मैं सारी सुबह तुम्हारी प्रतीक्षा करती रही। मैं विश्वास नहीं कर सकी, कि तुम चले गये थे। तुमने हम दोनों का वचन निभाया, अतः मुझे तुम पर गुस्सा था। मैंने सोचा, कि वह तो एक मजाक था। मुझे आशा थी कि तुम किसी भी झाड़ी के पीछे से निकल आओगे। पर नहीं, तुम सचमुच चले गये थे। शुक्रिया।

"वह सारा दिन मैंने विचारधारा में डूबते-उतराते बिताया, उस विचारधारा को मैं तुम तक भी पहुंचाना चाहूंगी, क्योंकि मेरे मन में एक अजीब और बद्धमूल-सा भय है, कि यदि मैं उसे नहीं पहुंचाती हूं, तो हमेशा तुम्हारे प्रति अपने कर्तव्य में निष्फल रहने की भावना सताती रहेगी मुझे और मैं वास्तव में तुम्हारे धिक्कार की पात्र हूंगी........

"फांग्युस्मार में तुम्हारे निवास के प्रथम कुछ क्षणों में मेरी अनुभूति आश्चर्य की थी—तुम्हारी उपस्थिति में एक विलक्षण सन्तोष की अनुभूति मेरी समग्र आत्मा को व्याप्त कर लेती थी ; 'एक इतना महान् सन्तोष' तुमने कहा था, 'कि मैं उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता !' खेद है ! इसी बात से मुझे उद्वेग होता है ।...........

"मेरे मित्र, मुझे भय है, कि कहीं तुम मुझे गलत न समझो । आखिरकार, कहीं तुम उसे तीक्षणता न समझने लगो, (ओह, कितनी गलत तीक्षणता थी) जो मेरी आत्मा की उग्रतम भावनाओं का केवल उद्गार-मात्र है ।

"यदि यह पर्याप्त नहीं है, तो यह प्रसन्नता की बात नहीं होगी । तुमने कहा था, क्या तुम्हें याद है ? और मैं नहीं समझ सकी थी, कि क्या उत्तर दूं । नहीं जरोम, यह हमारे लिए पर्याप्त नहीं है । जरोम, इसे हमारे लिए पर्याप्त नहीं होना चाहिए । मैं इस सुस्वादपूर्ण सन्तोष को सच्चे सन्तोष के रूप में नहीं ले सकती । क्या गत पतझड़ में हमने अनुभव नहीं किया था, कि उसके नीचे कितनी हृदय-पीड़ा छिपी है ?..........

"सच्चा सन्तोष ! आह, ईश्वर न करे, कि हम सिवा उसके किसी और प्रसन्नता के लिए पैदा हुए हों.............

"जिस प्रकार वह हमारा पत्र-व्यवहार ही था, जिसने गत पतझड़ में हमारे मिलन को आनन्द-शून्य कर दिया था, उसी प्रकार कल तुम्हारी उपस्थिति की स्मृति आज के मेरे पत्र का स्वाद नष्ट किये दे रही है । उस प्रसन्नता को क्या हो गया, जो मुझे तुम्हें पत्र लिखने में मिला करती थी ?

एक दूसरे को पत्र लिख-लिखकर, एक दूसरे के पास रह-रहकर, हमने उस आनन्द की पवित्रता को समाप्त कर डाला, जिसको हमारा प्यार प्राप्त करने का साहस रखता था, और अब अपनी इच्छा को जीतकर मैं 'मो-आर दे रोआ' के ऑसिनो के समान चिल्लाकर कहती हूं—'पर्याप्त हो गया, और अधिक नहीं, अब इसमें इतनी मिठास नहीं, जितनी पहले थी।'

"मेरे मित्र, नमस्कार। अब यहां से ईश्वरीय प्रेम प्रारम्भ होता है। क्या तुम कभी भी जान सकोगे, कि मैं तुम्हें कितना प्यार करती हूं ?........अन्त तक मैं रहूंगी तुम्हारी

'अलीसा'

परमार्थ के जाल के सम्मुख मैं निरुपाय था। समग्र वीरत्व मुझे आकर्षित करने और मेरी आंखों को चौंधियाने लगा, क्योंकि मैं उसे प्रेम से पृथक् नहीं कर सका। अलीसा के पत्र ने मुझे एक सवेग और मादक उत्साह से भर दिया। ईश्वर जानता है, कि मैं और अधिक परमार्थ के लिए केवल उसी के कारण प्रयत्नशील हुआ। कोई भी रास्ता, बशर्ते वह ऊंचाई की ओर ले जानेवाला हो, मुझे उस तक पहुंचा देगा। आह ! पृथ्वी कभी इतनी जल्दी इतनी अधिक नहीं सिकुड़ सकती थी, कि केवल वह और मैं दो ही उस पर खड़े रह सकें। खेद है, कि उसके बहाने की सूक्ष्मता मेरे ध्यान में नहीं आई थी और मैं यह कल्पना भी नहीं कर सका था, कि कोई इतनी भी ऊंचाई होगी, जहां केवल एक के लिए ही स्थान होगा और वह एक बार फिर मुझसे बच निकलेगी।

मैंने काफी लम्बा-चौड़ा उत्तर दिया। मुझे अपने पत्र का केवल वही अंश याद है, जिसमें कुछ स्पष्टता थी। मैंने लिखा था—"मैं बहुधा सोचा करता हूं, कि मेरा प्यार ही है, जिसे मैं अपने में सर्वोत्तम पाता हूं और मेरी सारी पुण्य-भावना उसी के सहारे पर आश्रित है, और वह मुझे, जो कुछ मैं हूं, उससे ऊंचा उठाता है, और तुम्हारे अभाव में बहुत मामूली प्रकृति के अत्यन्त

मध्यम स्तर तक मेरा पतन हो जायगा। यह तुम तक पहुंचने की आशा ही है, जिससे अत्यधिक दुर्गम पथ ही मुझे अच्छा प्रतीत होता है।"

मैंने इसके आगे क्या लिखा था, जिसने उसे निम्नलिखित उत्तर भेजने के लिए प्रेरित किया—

"पर, मेरे मित्र, परमार्थ-तत्त्व ऐसा नहीं है, जिसे चुना जाय, वह तो कर्तव्य है।" कर्तव्य शब्द के नीचे उसके पत्र में तीन बार लकीर डाली हुई थी। "मैं तुम्हें जो समझी हूं, यदि तुम वही हो, तो तुम भी इससे बचकर नहीं निकल सकोगे।"

बस इतना ही। मैंने समझा, या मुझे कुछ ऐसा भास हुआ, कि यहां पर हमारा पत्र-व्यवहार समाप्त हो जायगा, और किसी भी परामर्श का चाहे वह कितने ही आग्रह से किया गया हो; और किसी भी इरादे का, चाहे वह कितना ही पक्का हो, कोई परिणाम नहीं होगा। फिर भी मैंने उसे पत्र लिखे, खूब लम्बे और अत्यन्त आवेशपूर्ण। तीसरे पत्र के उतर में मुझे निम्नलिखित पत्र मिला—

"मेरे मित्र,

यह मत समझना कि मैंने तुम्हें पत्र न लिखने का कोई संकल्प किया हुआ है, केवल इतनी सी बात है कि मुझे अब पत्र लिखने में कोई आनन्द नहीं आता। और फिर भी तुम्हारे पत्र मुझे अभी तक अच्छे लगते हैं। पर मैं अपने को इस बात के लिए बहुत अधिक धिक्कारती हूं, कि क्यों मैंने तुम्हारे विचारों पर इतना अधिक अधिकार किया हुआ है।

"ग्रीष्म ऋतु अब बहुत दूर नहीं है। मेरा प्रस्ताव है, कि कुछ समय के लिए हम अपना पत्र-व्यवहार बन्द कर दें। तुम यहां आओ और सितम्बर के आखिरी पन्द्रह दिन मेरे साथ फांग्युस्मार में बिताओ। क्या तुम्हें स्वीकार है? यदि हां, तो उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हारे मौन को स्वीकृति समझूंगी, और इसलिए आशा करती हूं कि तुम उत्तर नहीं दोगे।"

मैंने उत्तर नहीं दिया। निःसन्देह यह मौन ही वह अन्तिम परीक्षा थी, जो वह मेरी ले रही थी। जब कुछ महीनों के कार्य और कुछ हफ्तों की यात्रा के बाद मैं फांग्युस्मार लौटा, तो मेरे मन में निश्चिन्तता थी और थी शान्ति।

मैं कुछ शब्दों द्वारा उस बात को एकदम कैसे स्पष्ट कर सकता हूं, जिसको पहलेपहल मैं भी इतना कम समझ पाया था? मैं यहां पर अपनी उस मानसिक यातना के सिवा और किस बात का चित्रण कर सकता हूं, जिसने उस क्षण से ही मुझे पूरी तरह व्यापृत कर लिया है? जो प्रेम अभी तक जीवित था, जो एक अत्यन्त कृत्रिम आवरण से ढका हुआ था, शुरू में मैं केवल इसी आवरण को देख सकता था——उसको पहचान सकने में मैं जो असफल रहा, उसके लिए मैं अपने को आज कदापि क्षमा नहीं कर सकता। और इसलिए जब मैंने अपने मित्र को नहीं पाया, तो उसे बुरा-भला कहने लगा. . . .नहीं! अलीसा, तब भी मैंने तुम्हें बुरा-भला नहीं कहा था, मैं तब तुम्हें पहचान नहीं रहा था, अतः निराशा के साथ रोया था। अब जब कि तुम्हारे प्रेम की शक्ति का ठीक-ठीक अन्दाजा मैं इस बात से लगा सकता हूं, कि अब वह बिलकुल मौन है और उसका निर्दय परिणाम मैं भुगत रहा हूं, क्या अब मैं तुम्हें और अधिक प्यार करूं, जब कि इतनी वेदना देकर तुम मुझसे वियुक्त हो गई हो?

क्या वह तुम्हारी घृणा थी? अथवा मेरे प्रति प्रेम का ठण्डा हो जाना था? नहीं ऐसी कोई बात नहीं थी, जिस पर मैं विजय कर सकता या जिसके विरुद्ध मैं संघर्ष कर सकता; और कभी-कभी इस आशंका से मुझे संकोच भी होने लगता था, कि कहीं मेरी मनोवेदना मेरी कल्पना का परिणाम तो नहीं है, क्योंकि इसका कारण इतना रहस्यमय था, और अलीसा जिस ढंग से इस सम्बन्ध में अपना अज्ञान प्रदर्शित करती थी, वह इतना चतुराई से पूर्ण था। इसलिए मैं किस बात की शिकायत कर सकता था? उसने हमेशा से भी अधिक मनोहारिणी मुस्कान से मेरा स्वागत किया। उसका

व्यवहार इतना सहृदयतापूर्ण और इतना आकर्षक पहले कभी नहीं हुआ था। पहले दिन तो मैं इस सबसे लुभा गया था। उसने अपने बाल एक नए तरीके से अर्थात् पीछे को खींचकर सीधे बांध रखे थे। इसका परिणाम यह हुआ था, कि अब उसके नखशिख पहले से कठोर प्रतीत होते थे, उनका असली भाव बदल गया था और एक भद्दी, फीके रंग की और मोटे सूत की पोशाक के कारण उसके शरीर की कोमल भाव-भंगिमा का स्थान भद्देपन ने ले लिया था ? पर आखिरकार, इससे क्या अन्तर पड़ता था ? मैंने अन्धे होकर सोचा, ये सब बातें कोई ऐसा विशेष महत्त्व नहीं रखतीं; इन्हे या तो स्वयं, अथवा मेरे कहने पर वह स्वयं ठीक कर लेगी। उसकी सहृदयता और मुझ पर विशेष ध्यान देने का मेरे ऊपर अच्छा असर नहीं पड़ा था, क्योंकि यह बात हमारे स्वभावों के इतनी विरुद्ध थी; और मुझे भय है कि मुझे उसमें स्वाभाविकता की अपेक्षा विवेकशीलता और प्रेम की अपेक्षा भद्रता अधिक दिखाई देती थी, यद्यपि इस बात को शब्दों द्वारा कहने की मैं कठिनता से ही हिम्मत करता हूं।

उस दिन शाम को जब मैं बैठक में गया, तो पियानो को अपने निश्चित स्थान पर न पाकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। मेरे निराशात्मक भाव के उत्तर में अलीसा ने बहुत शान्त स्वर में कहा––

"प्यारे मित्र, पियानो सुधरने गया है।" मामाजी ने डांटने के कड़े स्वर में कहा–"पर मेरी बच्ची, मैंने तुम्हें कई बार कहा, कि अब तक तो वह ठीक ही काम देता रहा, तुम उसे भेजने के लिए जरोम के वापस जाने तक तो ठहर जाती; तुम्हारी जल्दी ने हमें एक बड़े आनन्द से वंचित कर दिया।"

वह अपनी लज्जा को छिपाने के लिए एक ओर को मुड़कर बोली––"पर पिताजी, मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं कि पिछले दिनों उससे ऐसा बेसुरा स्वर निकलने लगा था; कि स्वयं जरोम को भी उसमें आनन्द न आता।"

मामाजी बोले–"जब तुम उसे बजाती थी तो वह इतना बुरा तो नहीं प्रतीत होता था ।"

वह कुछ देर तक नीचे झुकी आड़ में ठहरी रही। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे वह एक कुर्सी के गिलाफ का नाप ले रही हो। तब वह अकस्मात् कमरे से बाहर चली गई और बहुत देरी तक नहीं लौटी। फिर एक ट्रे पर शरबत का प्याला रखकर लाई; मामाजी प्रतिदिन शाम को उसे पिया करते थे।

अगले दिन उसने न तो अपने बालों का फैशन ही बदला, और न पोशाक ही। घर के सामने पड़ी एक बेंच पर अपने पिता के साथ बैठी हुई वह उस मरम्मत का काम निबटाती रही, जिसमें वह कल शाम से लगी हुई थी। बेंच पर अथवा पास ही पड़ी मेज पर मोजों से भरी एक बड़ी-सी टोकरी रखी थी, जिसमें हाथ डालकर वह नया काम उठाती जाती थी। कुछ दिनों बाद उसका स्थान तौलियों और चादरों ने ले लिया। ऐसा प्रतीत होता था, कि वह उस कार्य में इस हद तक डूब गई थी, कि उसकी आखें और होंठ बिलकुल भाव-शून्य हो गये थे।

उसके चेहरे से कविता का सम्पूर्ण भाव इस हद तक पुंछ गया था, कि यद्यपि मैं उसकी ओर कुछ देर से देख रहा था, पर वह मेरी दृष्टि को अनुभव करती हुई प्रतीत नहीं होती थी। उसका मुंह पहचान में नहीं आता था, इससे मैं इतना डरा, कि पहली शाम को मैंने जोर से पुकारा–"अलीसा !"

उसने सिर उठाकर कहा—"क्या है ?"

"मैं देखना चाहता था, कि तुम्हें मेरी आवाज भी सुनाई देती है या नहीं। तुम्हारे विचार मुझसे इतने दूर प्रतीत होते हैं।"

"नहीं, वे तो यहीं हैं, पर इस मरम्मत में बहुत ध्यान लगाना पड़ता है।"

"क्या तुम सीते-सीते यह पसन्द नहीं करोगी, कि मैं तुम्हें कुछ पढ़कर सुनाऊं ?"

"मुझे भय है कि मैं सुनने में अच्छी तरह ध्यान नहीं लगा सकती।"

"तुमने इतना तन्मय कर देनेवाला काम क्यों ले रखा है ?"

"किसी को तो इसे करना ही है ।"

"बहुत सी गरीब औरतें हैं, जो थोड़ी-सी कमाई के लिए इस काम को बड़ी खुशी से कर देंगी । तुम मितव्ययिता के विचार से तो इतना रस-शून्य काम कर ही नहीं सकतीं ?"

वह मुझे विश्वास दिलाने लगी कि उसे और किसी प्रकार की सिलाई इतनी पसन्द नहीं थी । वह बहुत दिनों से इसी किसम का काम करती आई है, और उसे और कोई काम करने का अभ्यास नहीं रहा है । यह बात कहते-कहते उसके होंठों पर हंसी खेल रही थी । उसकी इतनी मीठी आवाज भी मैंने पहले कभी नहीं सुनी थी । पर वही मुझे सबसे अधिक चोट पहुंचा रही थी ।" मैं बिलकुल स्वाभाविक बात कह रही हूं", उसका चेहरा घोषणा करता हुआ प्रतीत हो रहा था । "तुम इस बात को सुनकर दुःखी क्यों होते हो ?" और मेरे हृदय का सम्पूर्ण विरोध मेरे होंठों तक भी नहीं पहुंच सका । वह अन्दर ही अन्दर मेरा दम घोटने लगा ।

एक या दो दिन बाद की बात है, हम गुलाब के फूल चुन रहे थे; उसने मुझे निमन्त्रित किया कि मैं उन्हें उसके कमरे तक पहुंचा दूं । मैं वहां इस साल अभी तक नहीं गया था । कितनी ही मीठी-मीठी आशाएं मेरे हृदय में एकदम जाग उठीं । मैं अपनी मनोवेदना के लिये अपने को ही दोष देता था, अतः उसका एक शब्द मेरे हृदय पर मलहम रख देता ।

मैं उस कमरे में जाकर भावावेश में आये बिना कभी नहीं रह सकता था । मैं नहीं कह सकता कि वह क्या कारण था, जो वहां मुझे एक प्रकार की संगीतमयी शान्ति श्वास लेती हुई प्रतीत होती थी, और वहां मैं अलीसा को पहचान लेता था । खिड़की तथा पलंग के चारों ओर परदों की नीली आभा, महागनी का चमकता हुआ फर्नीचर, क्रमबद्धता, सफाई—ये सब बातें मेरे हृदय को उसकी पवित्रता और शान्त लावण्य का सन्देश देती थीं ।

मसाकियो के दो बड़े-बड़े फोटोग्राफ मैंने उसे इटाली से लाकर दिये थे,

वे उसके पलंग के पास दीवार पर लटके रहते थे। इस समय उन्हें वहां न देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया। मैं उससे पूछने ही वाला था कि उनका क्या हुआ, कि मेरी निगाह पास ही रक्खे हुए पुस्तकों के शेल्फ पर पड़ी। वहां वह अपनी रात को पढ़ने की पुस्तकें रक्खा करती थी। यह छोटा-सा संग्रह धीरे-धीरे बना था, उसमें कुछ तो वे किताबें थीं जो मैंने उसे दी थीं। कुछ दूसरों ने दी थीं और हमने उन्हें साथ-साथ पढ़ा था। अब मेरा ध्यान गया, कि ये पुस्तकें भी वहां से हटा दी गई थीं, और उनका स्थान बहुत सस्ती मामूली किसम की धार्मिक पुस्तकों ने ले लिया था। मेरा विचार था कि उनको वह हृदय से नफरत करती थी। अकस्मात् मेरी आंखें ऊपर उठीं, तो मैंने देखा कि अलीसा मुझे देखकर हंस रही थी, जी हां, सचमुच हंस रही थी। वह एकदम बोल उठी—"मुझे क्षमा करना, तुम्हारा मुंह देखकर मुझे हंसी आ गई, मेरा शेल्फ देखकर तुम्हारा मुंह इस प्रकार लटक गया था।"

मेरे हृदय में हंसी-मजाक की जरा भी प्रवृत्ति नहीं थी।

"नहीं अलीसा, क्या अब सचमुच तुम यही चीजें पढ़ती हो ?"

"हां, अवश्य ! इसमें आश्चर्य की क्या बात है ?"

"मैंने सोचा कि जो मन ठोस खाना खाने का अभ्यासी है, उसे ऐसी दिल उबानेवाली वस्तुओं से नफरत होगी।"

"मैं तुम्हारी बात समझी नहीं" वह बोली—"ये विनम्र आत्माएं मुझसे सरल-सरल बातें करती हैं, और यथाशक्ति अच्छे प्रकार से अपने भाव प्रकट करती हैं। मुझे उनकी संगति में आनन्द आता है। मैं पहले से ही जानती हूं, कि लच्छेदार भाषा का कोई जादू उन पर नहीं चल सकता और मैं भी उनको पढ़कर किसी तुच्छ प्रशंसा के प्रलोभन में नहीं पड़ूंगी।"

"तब अब तुम इसके सिवा और कुछ भी नही पढ़ती हो ?"

"प्रायः, हां, पिछले कुछ महीनों से। पर अब मुझे पढ़ने के लिए अधिक समय नहीं मिलता है। और मुझे मानना पड़ेगा, कि अभी मैंने जब इन

महान् लेखकों में से एक की कृति को दुबारा पढ़ने की कोशिश की, जिनकी प्रशंसा करना तुमने मुझे सिखलाया था, तो मुझे अनुभव हुआ कि मैं धर्म-शास्त्र में वर्णित उस मनुष्य के समान हूं, जो अपनी ऊंचाई एक फुट बढ़ाने की कोशिश करता है।"

"वह महान् लेखक कौन है, जिसने तुम्हें अपने सम्बन्ध में ऐसी विलक्षण सम्मति प्रदान की है?"

"उसने मुझे यह प्रदान नहीं की, पर उसको पढ़ते-पढ़ते स्वयं ही मेरी यह राय बनी....वह पास्कल था। शायद मैं किसी ऐसे प्रकरण में पहुंच गई थी, जो उतना अच्छा नहीं था...." मेरे हाव-भाव से अधीरता प्रकट हो रही थी, वह स्पष्ट पर नीरस स्वर में बोल रही थी, जैसे कि एक पढ़ा हुआ पाठ दोहरा रही हो। उसकी आंखें अपने फूलों की ओर थीं, जिन्हें वह कभी इधर और कभी उधर अनवरत रूप से सजा रही थी। वह मेरी अधीरता पर क्षण भर रुकी और फिर उसी स्वर में कहने लगी——

"इतनी विस्मयोद्बोधक महान् वाग्मिता और इतना प्रयत्न और इतना कम तथ्य! मैं कभी-कभी सोचती हूं, कि उसकी करुण स्वरलहरी कहीं विश्वास की अपेक्षा सन्देह का परिणाम तो नहीं है। पूर्ण विश्वास की वाणी में अपेक्षाकृत कम आंसू और कम कम्पन रहते हैं।"

"उन आंसुओं और उन कम्पनों के कारण ही उसकी वाणी का सौन्दर्य है।" मैंने कहने का प्रयत्न किया, पर उत्साह-शून्यता के साथ; क्योंकि जिस अलीसा को मैं प्यार करता था, इन शब्दों में उसका चिन्ह भी न था। जैसे वे मुझे याद हैं, मैंने उन्हें लिख दिया, अपनी ओर से कोई कलात्मकता या तार्किकता जोड़ने की कोशिश मैंने नहीं की।

"यदि वह पहले ही इस जीवन को इसके आनन्द से शून्य नहीं कर देता," वह कहती गई "तो परिणाम में उसका भार अधिक निकलता......"

"किससे?"

"उस अनिश्चित आनन्द से, जिसको वह प्रस्तुत करता है।"

"तब तुम्हें उस पर विश्वास नहीं है ?" मैंने आश्चर्य से पूछा ।

"कोई बात नहीं" उसने उत्तर दिया । "मैं इसे सन्दिग्ध ही रखना चाहती हूं, जिससे अन्त में सन्देह की कोई गुंजाइश ही न रह जाय । जो आत्मा भगवान् को प्यार करती है, वह नैसर्गिक महानता से परमार्थ में लीन हो जाती है और किसी प्रतिफल की आशा नहीं रखती ।"

"और उस अन्तर्हित सन्देहवाद का यही कारण है, जिसमें एक पास्कल की उत्कृष्टता आश्रय ग्रहण करती है ।"

वह मुस्कराकर बोली "सन्देहवाद नहीं—जानमनवाद !" पर इन सब बातों से मुझे क्या करना है ? "यहां ये बेचारी आत्माएं," वह अपनी किताबों की ओर मुड़कर बोली "यह बता भी न सकेंगी कि वे जानमन-वादी हैं या शान्तिवादी हैं अथवा कुछ और । वे उस घास के समान हैं जो बिना किसी चालाकी, कष्ट या सौन्दर्य के हवा के झोंके के सम्मुख झुक जाती है, वैसे ही ये ईश्वर के सामने झुक जाती हैं । उनकी दृष्टि में उनका अपना महत्त्व नहीं है, वे जानती हैं कि उनका मूल्य केवल इस बात में है कि ईश्वर के सम्मुख उनकी कोई सत्ता नहीं है ।"

"अलीसा", मैंने चिल्लाकर कहा "तुम इस प्रकार अपने पंखों को क्यों काट रही हो ?"

उसकी वाणी इतनी शान्त, संयत और स्वाभाविक थी, कि मेरा जोर-जोर से बोलना मुझी को अशोभन और असंगत प्रतीत हुआ । वह फिर मुस्कराई और सिर हिलाकर बोली "पास्कल के पास मेरी पिछली यात्रा से मुझे जो कुछ मिला. . . ."

"वह क्या था ?" मैंने पूछा, क्योंकि वह रुक गई थी ।

"ईसा का यह कथन—'जो कोई अपना जीवन बचाने का प्रयत्न करेगा, वह उसे खो देगा और इसी कारण", वह और भी अधिक मुस्कराती हुई और मेरी ओर टकटकी बांधकर देखती हुई कहती गई, "मैं वस्तुतः उसे मुश्किल से ही समझ पाई हूं । जब हम मामूली व्यक्तियों की संगति में

कुछ समय तक रह लेते है, यह कैसी असाधारण बात है, कि महान् व्यक्तियों की महत्ता किस प्रकार तब हमें श्रान्त कर देती है ।"

मैं अशान्त था, इसलिए क्या मैं कुछ भी उत्तर न दे सकता ? "यदि अब मुझे इन सब उपदेशों और विचारों को तुम्हारे हाथ पढ़ना पड़ा..."

"परन्तु" वह बीच में ही टोककर बोली "मुझे तुम्हें ये सब पढ़ते देख-कर बहुत दुःख होगा । मैं तुमसे सहमत हूं, मेरा विचार है कि तुम्हारा जन्म इससे बहुत अधिक अच्छी बातों के लिए हुआ है ।"

वह बड़ी सरलता से बोलती जा रही थी, और ऐसा प्रतीत होता था कि उसे इस बात का सन्देह भी नहीं था कि उसके शब्द मेरे हृदय को कैसे खण्ड-खण्ड कर देंगे ; और उनका परिणाम हमारे जीवनों का पृथक् दिशाओं में प्रवाहित हो जाना होगा। मेरा मस्तिष्क जला जा रहा था । मैं चाहता था कि बस बोलता ही जाऊं, मैं रो पड़ना चाहता था, शायद मेरे आंसू उसे जीत लेने में समर्थ होते, पर मै एक शब्द भी न बोल सका, मेरी कोहनियां कॉर्निश पर थीं और मेरा सिर हाथों से ढंका हुआ था । वह शान्तिपूर्वक अपने फूलों को सजाती रही, वह कुछ भी नहीं देख रही थी, अथवा मेरी यातना को जरा भी न देखने का बहाना कर रही थी. . . .

इसी वक्त पहली घण्टी बज उठी ।

"मै आज दोपहर का खाना खाने के लिए तैयार नहीं हो पाऊंगी ।" वह बोली, "तुम चले जाओ ।" मानो ये सब बातें नाटक के सिवा और कुछ न थीं, "हम यह सब बातचीत फिर कभी करेंगे ।"

यह बातचीत हम फिर कभी नहीं कर पाये । अलीसा हमेशा मुझसे बचती रही । यह बात नहीं थी कि वह जाहिरा तौर पर मुझसे बचती हुई प्रतीत हो, पर छोटे-मोटे अनेक काम अब उसके लिए बहुत आवश्यक व महत्त्वपूर्ण बन गये थे । मुझे अपनी बारी की इन्तजार करनी पड़ती थी । मुझे तब अवसर मिलता था, जब गृहस्थी के कामों की अनवरतता समाप्त हो जाय ; अनाज भरने की कोठरी में जो परिवर्तन हो रहे थे, जब उनकी

देखभाल समाप्त हो जाय; जब उसकी किसानों से मुलाकात हो चुके; जब वह गरीबों की देखभाल समाप्त कर चुके; और इन सब कामों में वह अधिक अधिक व्यापृत होती जाती थी। जो समय बचता था, वही मुझे मिलता था, पर वह बहुत ही कम होता था। मैं उससे जब भी मिलता, तब वह जल्दी में होती थी। फिर भी वह इन छोटे-मोटे कामों को बचाकर कुछ समय निकालती अवश्य थी और जब मैंने उसका पीछा करना छोड़ दिया, तब मैंने इस बात को अधिक अनुभव नहीं किया कि मेरा और उसका सम्बन्ध कितना कम रह गया था। छोटी-छोटी बातों से यह तथ्य मुझ पर अधिक अधिक स्पष्ट होता जाता था। जब अलीसा मुझे कुछ मिनटों का समय देती भी थी, तब वह बहुत ही गम्भीरतापूर्वक कुछ ऐसे ढग से बातें करती थी, मानो कोई बच्चों के साथ खेल कर रहा हो। वह मेरे पास से बिना कुछ ध्यान दिये मुस्कराती हुई तेजी से गुजर जाती थी। मुझे अनुभव होता था, कि वह अब मुझसे इतनी भिन्न हो गई थी, जैसे मेरा-उसका कभी परिचय ही न रहा हो। कभी-कभी ऐसा भी प्रतीत होता था, कि जैसे उसकी मुस्कराहट में चुनौती-सी छिपी हुई थी, या एक व्यंग्य का सा भाव था, और या यह कि मेरी इच्छाओं से इस प्रकार बच निकलने में उसे आनन्द आता था।. . . .और अब ऐसा हुआ कि मैंने अपने को ही बुरा-भला कहना शुरू कर दिया। मैं उसे उलटा-सीधा कहने की अपनी प्रवृत्ति के सामने सिर नहीं झुकाना चाहता था और वस्तुतः तो मैं समझ भी नहीं पाता था कि अब उससे क्या आशा रक्खूं और उसे किसलिए बुरा-भला कहूं।

इस प्रकार वे दिन, जिनसे मैंने इतनी अधिक प्रसन्नता की आशा लगा रखी थी, गुजरते गये। मैं निराशापूर्ण आश्चर्य के साथ उनका भागना देखता रहा। पर मेरी यह इच्छा नहीं थी, कि अब उनकी संख्या अधिक बढ़े, या उनके बीतने में अधिक देरी हो क्योंकि प्रत्येक दिन मेरे शोक में वृद्धि ही करता था। फिर भी मेरे जाने से दो दिन पहले अलीसा मेरे साथ घूमती हुई, उस निर्जन खाद के गड्ढे के पास पड़ी बेंच तक आई। वह उज्ज्वल पतझड़

की सायंकाल थी, क्षितिज पर एक भी बादल न था, प्रकृति की नीली रेखाएं और बीते हुए दिनों की छोटी से छोटी स्मृति स्पष्ट और साफ-साफ उस पर अंकित थी। मैं अपने शोकोच्छ्वास को और अधिक न दबा सका और मैंने अपनी वर्तमान अप्रसन्नता की झांकी उसे दिखलाई——मैंने उसे बताया कि मेरा तमाम आनन्द-उल्लास जाता रहा था।

"पर, मेरे मित्र, मैं क्या कर सकती हूं ?" वह एकदम बोल उठी, "तुम एक छाया के प्रेम में पड़ गये हो !"

"नहीं, अलीसा, छायामूर्ति नहीं",

"तुम्हारी कल्पना का एक व्यक्ति",

"खेद है कि मैं कल्पना नहीं करता। वह कभी मेरी मित्र थी। मैं उससे मिलने आया हूं। अलीसा ! अलीसा ! मैं तुम्हें प्यार करता था। तुमने अपने आपको क्या बना लिया ? तुमने अपना यह क्या हाल कर डाला ?"

उसने कुछ देर तक कोई उत्तर नहीं दिया और सिर झुकाकर एक फूल की पंखडियां उखाड़ती रही। फिर आखिरकार, "जरोम, तुम यह सीधी-सादी बात क्यों नहीं मान लेते, कि तुम मुझे अब कम प्यार करते हो !"

मैंने गुस्से से चिल्लाकर कहा——"क्योंकि यह बात सच नहीं है। क्यों कि यह बात सच नहीं हैं। क्योंकि मैंने तुम्हें इससे अधिक प्यार कभी नहीं किया ?"

उसने मुस्कराने की कोशिश करते हुए और अपने कन्धों को धीरे से सिकोड़ते हुए कहा——"तुम मुझे प्यार करते हो, फिर भी तुम मेरे लिए दुःखी हो।"

"मैं बीते हुए काल को प्यार नहीं कर सकता।"

मेरे पैरों के नीचे से जमीन खिसकती जा रही थी, और जो भी चीज हाथ लगे, मैं उसे पकड़े रहना चाहता था।

"और सब बातों के समान इस बात को भी समाप्त हो जाना चाहिए।"

"मेरा प्यार मेरे साथ ही समाप्त होगा ।"

"वह धीरे-धीरे घटता जायगा । वह अलीसा, जिसे तुम समझते हो कि तुम अभी तक प्यार करते हो, अब तुम्हारी स्मृति में ही रह गई है । एक दिन आवेगा, जब उसके प्रेम की स्मृतिमात्र ही रह जायगी ।"

"तुम तो इस प्रकार बातें कर रही हो, मानो मेरे हृदय में उसका स्थान कोई दूसरा ले लेगा, या जैसे मेरा हृदय प्रेम करना बन्द कर देगा । क्या तुम भूल गई, कि कभी तुम स्वयं भी मुझे प्यार करती थी, जो अब तुम्हें मुझे पीड़ित करने में इतना आनन्द आता है ?"

मैंने उसके सफेद होंठों को कांपते देखा, वह मुश्किल से सुने जा सकने वाले स्वर में बोली––

"नहीं, नहीं, अलीसा में वह परिवर्तन नहीं हुआ है ।" मैं उसकी बांह पकड़कर बोला, "क्यों, तब तो कुछ भी नहीं बदला है ।........

वह अधिक दृढ़ता के साथ बोली––

"एक शब्द है, जो सब कुछ समझा देगा, तुम उसे कहने की हिम्मत क्यों नहीं करते हो ?"

"कौन-सा शब्द ?"

"मैं बूढ़ी हो गई हूं।"

"चुप, चुप !"

मैंने तत्काल जवाब दिया, कि मैं स्वयं भी उसी के बराबर बूढ़ा हो गया हूं, और हम दोनों में आयु का उतना ही अन्तर है....पर वह अपने को संभाल चुकी थी, वह अद्वितीय क्षण अब गुजर चुका था, तर्क करके मैं अब अपना पलड़ा हल्का कर रहा था। मेरे पैरों के नीचे से जमीन खिसक गई।

दो दिन बाद में फांग्युस्मार चला आया । मेरा हृदय उसके प्रति और अपने प्रति असन्तोष से भरा था । जिस वस्तु को मैं 'परमार्थ' के नाम से पुकारता था, उसके प्रति मुझे एक अस्पष्ट-सी घृणा हो गई, और मेरा हृदय हमेशा जिस भाव से पूर्ण रहता था, उसके प्रति मुझमें

आक्रोश उत्पन्न हो गया। ऐसा प्रतीत होता था, कि इस अन्तिम मिलन में मेरे प्रेम की अतिशयता ने ही मेरे सारे उत्साह को समाप्त कर दिया था। यद्यपि अलीसा की प्रत्येक बात के विरुद्ध मैंने शुरू में विद्रोह किया, पर मेरा विरोध-भाव शान्त होते ही, वही सब बातें सजीव और विजयी होकर मेरे हृदय में रह गईं। हां, निःसन्देह उसी की बात ठीक थी ! मैं छायामूर्ति के प्रेम में पड़ा हुआ था, वह अलीसा, जिसे मैंने प्यार किया था, और अभी भी करता था, अब नहीं रही थी।. . . .हां, निःसन्देह हम बूढ़े हो गये थे। कविता की तान शान्त होकर एक भयंकर शान्ति छा गई थी, उसने मेरा समग्र हृत्पिण्ड जमा-सा दिया था, पर वास्तव में बात कुछ न थी। हम अपनी प्राकृतिक दशा में लौट आये थे, मैंने स्वयं धीरे-धीरे उसे ऊंचा स्थान प्रदान किया था, मैंने स्वयं उसकी मूर्ति बनाई थी। अपने हृदय के समग्र प्यार को उड़ेलकर मैंने उसकी पूजा की, पर मेरे सब प्रयत्नों का फल मुझे क्या मिला, सिर्फ थकान ? कुछ समय अलीसा मेरे प्रभाव के बिना रही और वह अपने स्वाभाविक स्तर पर उतर आई–मध्यम स्तर; मैं अपने को भी उसी स्तर पर पाता था, पर उस पर स्थित अलीसा को पाने की मुझे इच्छा नहीं थी। जिस ऊंचाई पर वह केवल मेरे अकेले के प्रयत्न से बिठा दी गई थी, वहां उस तक पहुंचने के योग्य पुण्योपार्जन का थकाने-वाला प्रयत्न कितना व्यर्थ और विचित्र था। यदि अहंकार कुछ कम होता तो हमारा प्रेम आसान होता. . .पर उद्देश्यरहित प्रेम में पड़े रहने से क्या मतलब हासिल होता ? यह तो हठधर्मिता होती, प्रेमनिष्ठता नहीं। प्रेमनिष्ठा भी किसके प्रति ? एक भ्रम के प्रति। क्या यह स्वयं स्वीकार कर लेना बुद्धिमत्ता न होगी, कि मैंने गलती की थी ?

इस बीच में मुझे एथेन्स के स्कूल में एक जगह मिल गई। मैं उसे स्वीकार करने के लिए तुरन्त तैयार हो गया। ऐसा करते हुए मेरे हृदय में कोई महत्त्वाकांक्षा या प्रसन्नता का भाव न था, मैंने तो केवल कहीं चले जाने के विचार का स्वागत किया। वही एकमात्र मेरा त्राण था।

आठवां अध्याय

मेरी अलीसा से एक मुलाकात और हुई, करीब तीन वर्ष पश्चात गर्मियों के अन्त में। दस महीने पहले मुझे उससे मामाजी की मृत्यु का समाचार मिला था। मैं उन दिनों पैलेस्टाइन की यात्रा पर था। वहां से मैंने उसे काफी लम्बा-चौड़ा पत्र लिखा था, पर उसका कोई उत्तर मुझे नहीं मिला था।

मुझे याद नहीं, कि मैं किस काम से ल्हाव्र गया था। मुझे एक स्वाभाविक प्रेरणा ने फांग्युस्मार की सड़क पर डाल दिया। मैं जानता था कि अलीसा वहां है। पर साथ ही मुझे यह भी भय था, कि वह अकेली नहीं होगी। मैंने अपने आने के विषय में कुछ भी नहीं लिखा था। पर मैं एक मामूली मिलनेवाले की हैसियत से जाऊं, यह विचार भी मुझे पसन्द न था। मैं बिना किसी विशेष विचार के उस सड़क पर चलता चला जा रहा था। क्या मैं मकान के अन्दर जाऊं या उससे मिले बिना ही लौट जाऊं? जी हां, निःसन्देह मैं थोड़ा-सा उस सड़क पर घूमूंगा, उस बेंच पर बैठूंगा, जहां शायद कभी-कभी वह अभी भी बैठने आती होगी....और मैं सोच रहा था कि अपने पीछे ऐसी कौन-सी निशानी छोड़ जाऊं, जो मेरे लौट आने पर, मेरे आने की सूचना दे देगी....इस प्रकार सोचता हुआ मैं धीरे-धीरे चलता गया, और अब जब कि मैंने उससे न मिलने का निश्चय कर लिया था, तो मेरे हृदय को उद्विग्न करनेवाले शोक का स्थान मीठी-मीठी उदासी ने ले लिया। मैं सड़क पर पहुंच गया था और मुझे भय था कि अकस्मात् किसी के सामने न पड़ जाऊं, इसलिये मैं खेत को घेरनेवाली मेड़ के परले सिरे पर की फुटपाथ पर चला जा रहा था। मैं मेड़ पर एक ऐसी जगह को जानता था,

जहां से बगीचे में झांका जा सकता था। मैं वहां चढ़ गया। एक अपरिचित माली रास्ते से कंकर-पत्थर हटा रहा था, पर वह जल्दी ही आंखों से ओझल हो गया। अहाते में एक नया दरवाजा बन गया था। जब मैं पास से गुजरा तो एक कुत्ता भोंकने लगा। आगे चलकर जब सड़क खत्म हो गई तो मैं दाहिनी ओर मुड़ा, और फिर बगीचे की दीवार के पास पहुंच गया। मैं 'बीच' वृक्षों के जंगलवाले भाग की ओर बढ़ा जा रहा था, जो उस सड़क के समानान्तर पर स्थित था, जिसे मैंने अभी छोड़ा था। जब मैं सब्जी के बगीचे में खुलनेवाले छोटे-से दरवाजे के सामने से गुजर रहा था, तो अकस्मात् अन्दर जाने की इच्छा मुझमें जाग उठी।

दरवाजा बन्द था। पर अन्दर की सिटकनी थोड़े ही प्रयत्न से खुल जाती, और मैं कन्धे का जोर लगाकर उसे खोलने ही वाला था....। उसी क्षण मुझे पदचाप सुनाई दी। मैं दीवार के कोने के पीछे छिप गया।

मैं यह नहीं देख सका, कि बगीचे में से कौन बाहर निकला, पर मैंने सुना और अनुभव किया कि वह अलीसा थी। वह तीन कदम आगे बढ़ी और कमजोर-सी आवाज में बोली—

"जरोम, तुम हो क्या ?"

मेरा तेजी से धड़कता हुआ हृदय रुक गया, और मेरे रुंधे कण्ठ से कोई शब्द नहीं निकला। वह और जोर से बोली—

"जरोम ! तुम हो क्या ?"

जब मैंने उसे अपने को इस प्रकार पुकारते सुना, तो मेरे हृदय में इतना अधिक भावोद्रेक हुआ कि मैं घुटनों के बल बैठ गया। मैंने अभी तक कुछ उत्तर नहीं दिया था, अतः अलीसा कुछ कदम और आगे बढ़ी और दीवार के कोने पर मुड़ गई। अकस्मात् मैंने अनुभव किया कि वह ठीक मेरे सामने थी—मेरे सामने जो मानो उसे देख पाने के भय से ही अपना मुंह बांहों में छिपाये घुटनों के बल बैठा था। वह कुछ क्षण मुझ पर झुकी खड़ी रही, और मैंने उसका कमजोर हाथ चुम्बनों से ढक डाला।

"तुम क्यों छिपे हुए थे ?" वह इतनी सरलता से पूछ रही थी, मानो अनुपस्थिति के वे तीन वर्ष केवल कुछ दिन ही हों।

"तुमने कैसे अनुमान लगाया कि मैं था ?"

"मुझे तुम्हारे आने की प्रतीक्षा थी।"

"मेरी प्रतीक्षा थी ?" मैंने इतने आश्चर्य से पूछा कि केवल उसके शब्दों को ही दोहरा सका,....और मैं अभी तक घुटनों के बल बैठा था।

वह बोली-"चलो, चलकर बेंच पर बैठें। हां, मैं जानती थी, कि मेरी मुलाकात तुमसे एक बार और होगी। पिछले तीन दिनों से मैं यहां बराबर शाम को आ रही हूं और तुम्हें पुकारती रही हूं, जैसे आज पुकारा था.... तुम बोले क्यों नहीं थे ?"

"यदि तुम अकस्मात् आज मेरे सामने न आ पड़ती, तो मैं तुमसे बिना मिले चला जाता।" जिन भावनाओं ने शुरू में मुझे दबोच लिया था, उन्हें अपने हृदय की लौहभित्तियों में बन्द करते हुए मैंने उत्तर दिया-"मैं कार्यवश लहाव्र आया था और मेरी इच्छा थी कि मैं इस सड़क पर और बगीचे के चारों ओर घूमूं और थोड़ी देर उस बेंच पर बैठूं, जहां मेरा विचार था कि तुम अब भी कभी-कभी बैठने आती होगी और फिर....।"

"देखो, पिछले तीन दिनों से मैं शाम को यहां बैठकर पढ़ने के लिए क्या लाती रही हूं," वह बीच में ही टोककर बोली, और मेरी ओर पत्रों का एक बण्डल बढ़ा दिया। मैंने देखा, ये वही पत्र हैं जो मैंने इटली से उसे लिखे थे। उस क्षण उसकी ओर देखने के लिए मैंने आंखें उठाईं। वह असाधारण तौर पर बदल गई थी, उसके शरीर की हड्डियां-हड्डियां रह गई थीं, और शरीर बिलकुल पीला पड़ गया था। यह देखकर मेरे हृदय पर बड़ा आघात पहुंचा। अपना समग्र भार मेरी बांहों पर डालकर, वह मुझे इस प्रकार चिपट गई, जैसे या तो वह डरी हुई थी, अथवा उसे सर्दी लग रही थी। उसने अभी तक बिलकुल काले कपड़े पहन रखे थे, और सिर पर काली लेस की टोपी

लगा रखी थी। उससे उसका चेहरा भी चारों ओर से घिरा हुआ था, इस कारण भी उसका पीलापन बढ़ गया था। वह मुस्करा रही थी, पर ऐसा प्रतीत होता था, कि उसके कमजोर अंग मुश्किल से उसका भार उठा पाते हैं। मैं यह जानने को उत्सुक था, कि क्या वह फांग्युस्मार में अकेली रहती है। नहीं, राबेअर भी उसके साथ रह रहा था, ज्यूलिएत्, एदुआर और उनके तीनों बच्चे भी उसके साथ अगस्त भर रहने के लिए आये थे. . . . हम बेंच तक पहुंचकर उस पर बैठ गये और हमारी बातचीत कुछ मिनटों तक साधारणतया मामूली विषयों पर होती रही।

वह मेरे कार्य के विषय में पूछती रही। मैंने कटुता के साथ उत्तर दिया। मैं चाहता था कि वह अनुभव करे कि अब मुझे अपने कार्य में कोई आनन्द नहीं आता। मैं चाहता था कि मैं भी उसे वैसे ही निराश करूं जैसे उसने मुझे किया था। मैं नहीं कह सकता कि मैं सफल हुआ या नहीं, पर यदि हुआ, तो उसने इस बात को प्रकट नहीं किया। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं प्रेम और आक्रोश दोनों के भाव से पूर्ण था, और जितना सम्भव था उतनी कठोरता के साथ बोलने का प्रयत्न कर रहा था। भावनाओं के वशीभूत होकर बीच-बीच में मेरी वाणी कांपने लग जाती थी, अतः मुझे अपने आप पर भी गुस्सा था।

सूरज डूब रहा था। थोड़ी देर के लिए एक बादल ने आकर उसे ढक लिया। फिर वह हट गया, हमारे ठीक सामने क्षितिज के किनारे सूर्य निकल आया, और खाली खेतों को जगमगाती हुई ज्योति से पूर्ण कर दिया। हमारे पैरों के पास फैली पड़ी हुई घाटी में अकस्मात् सुवर्ण का ढेर लग गया। इसके बाद सूर्य अस्त हो गया। मेरी आंखें चौंधियां गईं और मैं निर्वाक् होकर बैठा रहा। ऐसा महसूस होता था, जैसे एक प्रकार के सुवर्णमय आनन्दातिरेक ने चारों ओर से आकर मुझे घेर लिया और उसमें मेरा तमाम क्रोध बह गया। अब मेरे हृदय में प्रेम के अतिरिक्त और कोई भाव नहीं रह गया था। अलीसा मेरा सहारा लिये आगे को झुकी बैठी थी, वह अब सीधी

होकर बैठ गई। उसने अपनी चोली में से एक पतले नरम कागज में लिपटा हुआ एक छोटा-सा पैकेट निकाला। वह उसे मुझे देने लगी, पर रुक गई, और संकोच करती हुई प्रतीत हुई। जब मैं उसकी ओर आश्चर्य से देखने लगा, तो

"सुनो जरोम," वह बोली "यह मेरा एमेथिस्ट का क्रास है, जो इस कागज में लिपटा हुआ है। पिछले तीन दिनों से रोज शाम को मैं इसे लेकर यहां आती रही हूं, क्योंकि बहुत दिनों से मेरी इच्छा इसे तुम्हें दे देने की थी।"

"मैं इसका क्या करूंगा ?" मैंने एकदम सीधा सवाल पूछा।

"इसे मेरी स्मृति में अपनी कन्या के लिए रख लो।"

"कौन सी कन्या ?" मैं अलीसा की बात नहीं समझा, इसलिए उसकी ओर देखते हुए मैंने चिल्लाकर पूछा।

"मेहरबानी करके बहुत शान्ति के साथ मेरी बात सुनो। नहीं, मेरी ओर इस तरह मत देखो। पहले ही मेरे लिए तुमसे कुछ कहना कठिन हो रहा है, पर मुझे कहना ही पड़ेगा, मुझे अपनी यह बात तो कहनी ही होगी। सुनो, जरोम, एक दिन तुम शादी कर लोगे,—नहीं उत्तर न दो, बीच में मत बोलो, मैं तुमसे प्रार्थना करती हूं। मैं केवल यही चाहती हूं कि तुम याद रखखो कि मैं तुम्हें बहुत अधिक प्यार करती थी, और.....बहुत दिन हुए. . . .तीन साल हुए, मैंने सोचा था कि तुम्हारी कन्या एक दिन तुम्हारी पसन्द के इस छोटे-से क्रास को मेरी यादगार में पहनेगी। आह ! यह जाने बिना कि यह किसका था.....और शायद तुम उसका नाम..... मेरे नाम पर.....रक्खोगे....."

वह रुक गई, उसकी वाणी रुंध गई थी, मैंने अत्यधिक कड़वाहट के साथ चिल्लाकर कहा—

"इसे तुम उसे स्वयं क्यों नहीं देती हो ?"

उसने फिर कुछ कहने की कोशिश की। उसके होंठ रोते हुए बच्चे के होंठों के समान कांप उठे, पर वह रोई नहीं। उसकी आंखों में एक

असाधारण ज्योति चमक रही थी, अब वह एक दैवी स्वर्गीय सौन्दर्य के साथ उसके चेहरे पर व्याप्त हो गई।

"अलीसा ! मैं किससे ब्याह करूंगा ? तुम जानती हो, मैं तुम्हारे अतिरिक्त किसी और को प्यार नहीं कर सकता..." और मैंने अकस्मात् बड़े जोर से उसको अपनी छाती पर चिपटाकर अपनी बांहों से पीसते हुए उसके होंठों पर असंख्य चुम्बन कर दिये। क्षण भर मैं उसे बिना बाधा के पकड़े रहा, और वह भी मुझ पर आधी औंधी पड़ी रही। मैंने देखा, उसकी दृष्टि धुंधली होती जा रही है। फिर उसकी आंखें बन्द हो गई और इतनी मीठी और सच्ची वाणी में वह बोली, कि वैसी वाणी मैंने कहीं या कभी और सुनी हो, सो याद नहीं आता—

"मेरे मित्र, हम दोनों पर दया करो। आह ! हमारे प्रेम को विकृत न करो !"

शायद उसने यह भी कहा था, "कायर मत बनो।" या शायद मैं ही था, जिसने अपने आपसे यह बात कही थी। मैं अब कह नहीं सकता, पर अकस्मात् मैं उसके सामने घुटनों के बल बैठ गया और अपनी बांहें धार्मिक भावना के साथ उसके चारों ओर परिवेष्टित कर मैंने कहा—

"अगर तुम मुझे इतना प्यार करती थी, तो हमेशा मुझसे नफरत क्यों करती रही ? सोचो तो ! मैंने पहले ज्यूलिएत् का ब्याह होने की प्रतीक्षा की। मुझे यह भी समझ में आता था कि तुम उसकी प्रसन्नता की प्रतीक्षा कर रही हो। वह प्रसन्न है, यह तुमने स्वयं मुझसे कहा है ! मैं बहुत दिनों तक सोचता रहा, कि तुम अपने पिता को अकेला नहीं छोड़ना चाहती। पर अब तो हम दोनों अकेले रह गये हैं।"

"आह, अब हम बीती बातों के लिए शोक न करें," वह धीरे से बोली, "वह पृष्ठ मैं अब उलट चुकी।"

"अलीसा, अभी भी समय है।"

"नहीं, मेरे मित्र, अब समय नहीं है। जिस क्षण हमारे प्रेम ने हमें भविष्य

में एक दूसरे के प्रेम से भी अधिक ऊंची एक अभीष्ट वस्तु को दिखलाया, तभी से समय नहीं रहा। मेरे मित्र, तुम्हारा धन्यवाद है, कि मेरे स्वप्न इतने ऊंचे उठ सके कि पार्थिव सन्तोष हमारे लिए अधःपात होता। मैंने बहुधा सोचा है, कि हमारा जीवन एक दूसरे के साथ कैसा बीतता। यदि उसकी पूर्णता में कुछ भी कमी होती, तो मैं अपने प्रेम.... को सहन न कर सकती।"

"क्या तुमने यह भी कभी सोचा है, कि एक दूसरे के बिना हमारा जीवन कैसा होगा ?"

"नहीं ! कभी नहीं।"

"अब तुम वह समझती हो ! पिछले तीन वर्षों से मैं तुम्हारे बिना बड़े कष्ट के साथ इधर-उधर फिरता रहा हूं......।"

सायंकाल समाप्त हो रही थी।

"मुझे सर्दी लग रही है" वह उठती हुई और अपना शाल अपने कन्धों पर इस तरह कसकर लपेटती हुई बोली, कि जिससे मैं उसकी बांह फिर भी थाम सकूं। "तुम्हें बाइबल का वह वाक्य याद होगा, जिसे पढ़कर हमें इतनी तकलीफ हुई थी और जिसके बारे में हमारा ख्याल था कि हम उसे ठीक-ठीक नहीं समझ सके हैं; 'उन सबको केवल प्रतिज्ञात वस्तु ही नहीं मिली, ईश्वर ने हमारे लिए कुछ अधिक अच्छी बातें भी जुटाई हैं'......."

"क्या तुम अभी तक इन शब्दों पर विश्वास करती हो ?"

"हां, वह तो मुझे करना ही चाहिए।"

हम और कुछ कहे बिना, एक दूसरे के साथ-साथ कुछ क्षणों तक चलते रहे। फिर वह बोली--

"जरोम, क्या यह बात तुम्हारे लिए बुद्धिगम्य है ?....'कुछ अधिक अच्छी बातें,' और अकस्मात् उसकी आंखों से आंसू बहने लगे और वह एक बार फिर बोली "कुछ अधिक अच्छी बातें"। हम फिर बगीचे के उस छोटे

से दरवाजे पर पहुंच गये थे, जिससे वह कुछ समय पहले निकली थी। वह मेरी ओर मुड़कर बोली——

"नमस्कार ! नहीं, और आगे मत आओ। नमस्कार, मेरे प्यारे दोस्त, अब....अधिक अच्छी बातें.....प्रारम्भ होनेवाली हैं।"

क्षण भर तक वह मेरी ओर देखती रही, उसने मुझे जोर से पकड़ रखा था। हम दोनों एक दूसरे से हाथ भर दूरी पर थे, उसके दोनों हाथ मेरे कन्धों पर थे और उसकी आंखें वर्णनातीत प्रेम से पूर्ण थी।

ज्यों ही दरवाजा बन्द हुआ, और मैंने उसके सिटकिनी बन्द करने की आवाज सुनी, मैं दरवाजे के पास बैठ गया। मैं अनन्त निराशा के समुद्र में गोते खाने लगा और रात में बहुत देर तक इसी प्रकार रोता हुआ और सुबकियां भरता हुआ बैठा रहा।

पर उसे रोके रहना, दरवाजे को जबर्दस्ती खोलना, घर में बुरे-भले किसी भी तरीके से घुसना—वह घर जिसमें अभी तक भी मेरा प्रवेश निषिद्ध नही था और आज भी नहीं है, जब मैं बीती बातों पर दृष्टिपात् करता हूं और विचार करता हूं——नहीं, ये सब बातें मेरे लिए सम्भव नहीं थीं। जो यहां पर मेरी इस मनोवृत्ति को नहीं समझ पाता है, वह अभी तक मुझको ही नहीं समझ पाया है।

असहनीय चिन्ता के कारण मैंने कुछ दिन पश्चात् ज्यूलिएत् को पत्र लिखा। मैंने उसे फांग्युस्मार की अपनी यात्रा के विषय में लिखा और लिखा कि अलीसा के हल्दी-जैसे रंग और हड्डियों का ढांचा बने शरीर ने मुझे कितना डरा दिया था। मैंने उससे प्रार्थना की कि वह यथाशक्य सब बातों पर ध्यान दे और मुझे अलीसा का समाचार लिखे। मुझे स्वयं अब उससे पत्र पाने की आशा नहीं रही थी।

कुछ दिन कम एक मास पश्चात् मुझे निम्नलिखित पत्र मिला——

"मेरे प्यारे जरोम,

मैं तुम्हें बहुत ही शोकपूर्ण समाचार लिख रही हूं। हमारी बेचारी

अलीसा अब नहीं रही। खेद है, कि अपने पत्र में तुमने जिस भय को प्रकट किया था, वह निराधार न था। पिछले कुछ महीनों से यद्यपि उसे कोई खास बीमारी न थी, पर वह अन्दर ही अन्दर छीजती जाती थी। फिर भी वह मेरी प्रार्थना के सामने झुक गई और डाक्टर को दिखाने के लिए तैयार हो गई। डाक्टर ने मुझे लिखा था कि उसे कोई खास शिकायत नहीं थी। पर तुमसे मिलने के तीन दिन बाद वह अकस्मात् फांग्युस्मार छोड़कर चली गई थी। मुझे तो राबेअर के पत्र से मालूम पड़ा कि वह चली गई है। वह मुझे तो इतनी कम चिट्ठियां लिखती थी कि यदि राबेअर न लिखता तो मुझे उसके भागने का पता भी न चलता और मेरे ध्यान में यह बात बहुत देर में आती कि उसके मौन रहने में कोई भय का कारण भी हो सकता था। मैंने राबेअर को बहुत भला-बुरा कहा, कि उसने उसे इस प्रकार क्यों जाने दिया और वह स्वयं उसके साथ पेरिस क्यों नहीं गया। क्या तुम विश्वास करोगे कि उस दिन से हमें तो उसका अता-पता मालूम ही नहीं पड़ा। तुम मेरी दुश्चिन्ता की कल्पना कर सकते हो, न उससे मिलने का कोई साधन था और न ही उसे लिखा ही जा सकता था। यह सच है कि कुछ दिनों बाद राबेअर पेरिस गया था, पर वह कुछ भी पता न कर सका। वह इतना ढीला-ढाला है, कि हमें विश्वास नहीं आया कि उसने यथोचित उद्योग किया भी होगा। हमें पुलिस को खबर देनी पड़ी। इतनी हृदयहीन व अनिश्चित अवस्था में रह सकना हमारे लिए सम्भव न था, अतः एदुआर स्वयं गये और उस छोटे से शुश्रूषालय का पता लगाने में समर्थ हुए, जहां अलीसा ने शरण ली थी। खेद है, कि अब बहुत देरी हो चुकी थी। मुझे उस शुश्रूषालय के प्रधान का पत्र मिला, जिसमें उसकी मृत्यु का समाचार था। साथ ही, मुझे एदुआर का तार भी मिला। वे समय पर नहीं पहुंच सके थे और उसे जीवित नहीं देख सके थे। अपने आखिरी दिन उसने एक लिफाफे पर हमारा पता लिख दिया था, जिससे हमें सूचना दी जा सके और एक दूसरे लिफाफे में उस पत्र की नकल रख दी थी, जो उसने

लहाव्र में हमारे वकील को अन्तिम निर्देश देने के लिए लिखा था। मेरा विचार है, कि इस पत्र में कुछ पंक्तियां तुम्हारे सम्बन्ध में थीं। मैं उनके विषय में तुम्हें जल्दी ही लिखूंगी। परसों उसका मृतक-संस्कार हो गया। एदुआर और रावेअर उस समय उपस्थित होने में समर्थ हुए। अर्थी के पीछे जानेवाले केवल वे ही नहीं थे, शुश्रूषालय के कुछ बीमार भी संस्कार में उपस्थित रहना चाहते थे, वे भी शव के पीछे-पीछे कब्रिस्तान तक गये। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मेरे पांचवें बच्चे का जन्म किसी भी घड़ी हो सकता है, और बदकिस्मती से मैं हिल भी नहीं सकती।

"मेरे प्यारे जरोम, इस हानि से तुम्हें जो गम्भीर दुःख होगा, उसका मुझे ज्ञान है, और टूटते हुए हृदय से मैं तुम्हें यह पत्र लिख रही हूं। पिछले दो दिनों से मैं बिस्तरे पर लेटने के लिए मजबूर हूं, और कठिनता से ही पत्र लिख पा रही हूं। पर मैं नहीं चाहती थी, कि कोई और, यहां तक कि एदुआर या रावेअर भी तुम्हें उसके विषय में लिखें, जिसे इस विशाल संसार में केवल हमीं दोनों ने पहचाना था। अब मैं एक परिवार की प्रौढा माता हूं, और ज्वलन्त भूतकाल भस्म के ढेर से ढक गया है, क्या अब मैं तुमसे मिलने की आशा कर सकती हूं। यदि कभी किसी काम से या यों ही घूमते-फिरते तुम नीम आओ, तो ऐग्यु-वीव् जरूर आना। एदुआर तुमसे मिलकर खुश होंगे और मैं और तुम मिलकर अलीसा के विषय में बातें करेंगे। नमस्कार, मेरे प्यारे जरोम।

"प्यार के साथ तुम्हारी समदुःखिनी"

कुछ दिनों वाद मुझे मालूम पड़ा कि अलीसा फांग्युस्मार को अपने भाई को दे गई है। पर यह भी लिख गई है, कि उसके कमरे का सब सामान और कई एक मेज-कुर्सियां ज्यूलिएत् को भेज दी जायं। मुझे कुछ दिनों बाद कुछ कागज मिले, जिन्हें वह एक मोहरबन्द पैकेट में मेरा पता लिखकर रख गई थी। मुझे यह भी मालूम पड़ा, कि उसने प्रार्थना की थी कि जिस छोटे-से एमेथिस्ट क्रास को अपनी अन्तिम मुलाकात में मैंने लेने से इनकार

कर दिया था, उसे उसके गले में पहना दिया जाय और मुझे एदुआर ने बताया कि ऐसा कर दिया गया था।

जो मुहरबन्द पैकेट मुझे वकील ने भेजा था, उसमें अलीसा की डायरी थी। मैं यहां उसके बहुत-से पृष्ठ उद्धृत कर रहा हूं, और किसी टीका-टिप्पणी बगैर उन्हें ज्यों का त्यों दे रहा हूं। आप स्वयं ही अच्छी तरह कल्पना कर सकेंगे, कि उसे पढ़कर मेरे मन में क्या-क्या विचार उठे होंगे, और मेरे हृदय में कैसा तूफान उठा होगा। मैं उसका एक बहुत अपूर्ण-सा ही चित्र खींच सकता हूं।

अलीसा की डायरी

ऐग्यु-वीव्

परसों लहाव्र से चले थे, कल नीम पहुंचे, यह मेरी प्रथम यात्रा है ! घर के काम-काज की देखभाल नहीं करनी है, खाना भी नहीं बनवाना है, परिणामस्वरूप कुछ सुस्ती का सा भाव है। आज २३ मई १८८–को अपनी पच्चीसवीं वर्षगांठ के दिन, किसी विशेष प्रसन्नता के बिना, केवल दिल बहलाव के लिए मैं इस डायरी को आरम्भ करती हूं। शायद अपने जीवन में पहली बार, एक भिन्न प्रकार की प्रायः विदेशी सी भूमि में–ऐसी भूमि में, जिससे अभी तक मैं परिचित नहीं हुई हूं, मैं अकेलापन महसूस कर रही हूं। शायद इसके पास भी मुझे सुनाने के लिए वही बातें हैं, जो नारमान्दी के पास थीं—वही बातें, जो मैं फांग्युस्मार में बिना थके सुना करती थी। क्योंकि ईश्वर सर्वत्र एक समान है, पर यह दक्षिण की भूमि एक ऐसी भाषा बोलती है, जिसे अभी तक मैंने सीखा नहीं है, और जिसे मैं आश्चर्य के साथ सुनती हूं।

२४ मई

ज्यूलिएत् मेरे पास एक सोफा पर ऊंघ रही है। हम एक खुली गैलरी में बैठे हैं। यह स्थान सारे घर में विशेष आकर्षक है, और इतालियन गृह-निर्माण-कला के अनुसार बना है। यह गैलरी कंकरीदार आंगन के सामने है, यह अहाता बगीचे के साथ जुड़ा हुआ है। सोफे से उठे बिना ही ज्यूलिएत् को लॉन के ढलान पर पानी का एक जमाव दिखाई देता है, जहां रंग-बिरंगी किस्म की बत्तकें खिलवाड़ कर रही हैं, और दो हंस तैर रहे हैं। कहते हैं,

कि एक ऐसी धारा यहां पानी पहुंचाती रहती है, जो ग्रीष्म ऋतु में बहुत गर्मी पड़ने पर भी नहीं सूखती है। फिर वह बाग में होकर बहती हुई हमेशा बढ़ते हुए झाड़-झंखाड़ों के एक झुण्ड में समा जाती है। वह एक ओर से तो सूखी।नदी के तल से घिरी है और दूसरी ओर अंगूर के झाड़ों से। इस प्रकार वह अन्त में इन दोनों के बीच में ही समाप्त हो जाती है।

एदुआर तिसिए कल जब पिताजी को बगीचा, खेत, वाइन के गोदाम और अंगूरों के बाग दिखला रहे थे, तब मैं ज्यूलिएत् के साथ घर में ही रह गई थी। आज सुबह बहुत तड़के-तड़के मैं पहलेपहल बगीचे में अकेली गई और बहुत-सा नवीन ज्ञान प्राप्त किया। बहुत-सी नई-नई लताएं देखी, कितने ही पेड़ मेरे लिए सर्वथा अपरिचित थे, उनका नाम जानने की मेरी बड़ी इच्छा हुई। मैंने उनमें से प्रत्येक की एक-एक छोटी-सी टहनी तोड़ ली, जिससे खाने के समय उनके नाम पूछ सकूं। मैंने पहचाना, कि उनमें कई एक तो हमेशा हरे रहनेवाले ओक—बांझ—के पेड़ थे। दोरिया पैम्फिली या विला बोर्घम के बगीचों में उन्हें देखकर जरोम कितना प्रसन्न होता था। हमारे उत्तरीय वृक्षों के ये बहुत दूर के सम्बन्धी हैं और स्वरूप में उनसे बहुत भिन्न हैं। बगीचे के प्रायः सबसे परले सिरे पर एक छोटा रहस्यपूर्ण-सा कुंज है, इसे वे चारों ओर से घेरे हुए है—वहां इतनी नरम और पैरों को सुख देनेवाली घास का गलीचा बिछा हुआ है, कि ऐसा प्रतीत होता है, मानो वह वनदेवियों की संगीत-सभा को निमन्त्रित कररहा हो। फांग्युस्मार में प्रकृति के सान्निध्य में आकर मेरे हृदय में पूर्ण धार्मिकता का भाव उत्पन्न होता था। मुझे आश्चर्य और व्याकुलता है, कि यहां मेरे कितना ही प्रयत्न करने पर भी मेरे मन में आधी नास्तिकता के भाव क्यों उठे हैं। और साथ ही जिस आतंक के भाव से मैं अधिकाधिक दबी हुई अनुभव कर रही हूं, वह भी धार्मिकता के भाव से पूर्ण है। मेरे मुंह से निकला "हे भगवान्"। हवा स्फटिक के समान स्वच्छ थी और एक विलक्षण मौन सर्वत्र छाया हुआ था। मैं आर्फे और आर्मीद की बात सोच रही थी, कि अकस्मात् एक अकेली चिड़िया गा

उठी। वह मेरे इतना पास थी और उसका गाना इतना करुण व पवित्र था, कि अकस्मात् ऐसा प्रतीत हुआ, मानो तमाम प्रकृति उसी का इन्तजार कर रही थी। मेरा हृदय जोर से धड़क उठा, मैं क्षण भर एक पेड़ के सहारे खड़ी रही और फिर किसी और के आने से पहले ही घर लौट आई।

२६ मई

अभी तक जरोम का कोई पत्र नहीं आया। यदि वे लहाव्र के पते पर मुझे पत्र लिखते, तो वह यहां भेज दिया जाता.....। मैं अपनी चिन्ता इस डायरी के अतिरिक्त और किसी के सामने प्रकट नहीं कर सकती। पिछले तीन दिनों से मेरा ध्यान इसकी ओर से क्षण भर को भी नहीं हटा है, चाहे हम लोग घूमने गये हों, चाहे मैं पढ़ रही हूं, अथवा प्रार्थना कर रही हूं। आज मैं और कुछ भी नहीं लिख पा रही हूं। मैं जब से ऐंग्युवीव् पहुंची हूं, हृदय में एक अजीब किस्म की उदासी भर रही है। शायद निष्कारण ही––पर वह मेरे हृदय में इतनी बद्धमूल है, कि ऐसा प्रतीत होता है कि वह बहुत दिनों से अन्दर ही अन्दर जड़ पकड़े हुए थी और अपने जिस आनन्दी स्वभाव का मुझे अभिमान था, वह केवल उसकी ऊपरी सतह को ही ढके हुए था।

२७ मई

मैं अपने आपसे झूठ क्यों बोलूं ? ज्यूलिएत् की प्रसन्नता को देखकर प्रसन्न होने के लिए मुझे प्रयत्न करना पड़ता है। उसकी वह प्रसन्नता, जिसके लिए मैं इतनी उत्कण्ठित थी, यहां तक कि अपनी प्रसन्नता को भी उसके लिए बलिदान करने को तैयार हो गई थी, अब मुझे कष्टदायक प्रतीत होती है; अब जब कि मैं देखती हूं, कि उसने उसे बिना किसी कष्ट के प्राप्त कर लिया है और उसकी यह प्रसन्नता मेरी और उसकी कल्पना की प्रसन्नता से इतनी भिन्न है। यह सब समस्या कितनी जटिल है ! हां,....मैं समझ गई, कि मेरे अन्दर सोया हुआ मेरा अहंकार भयंकर रूप से जग गया है, और

क्योंकि मेरे बलिदान के अतिरिक्त भी और कहीं वह अपनी प्रसन्नता प्राप्त कर सकी है, उसको प्रसन्नता-लाभ के लिए मेरे बलिदान की आवश्यकता नहीं हुई है, इसलिए मेरे अहंकार-भाव को चोट पहुंची है।

और अब मैं अपने आपसे पूछती हूं, कि जरोम के मौन के कारण यह कैसी बेचैनी है, क्या यह बलिदान सचमुच मेरे हृदय में व्याप्त हो गया था ? ऐसा प्रतीत होता है, कि जैसे मैं अपने को तुच्छ अनुभव कर रही हूं कि क्यों ईश्वर अब मुझसे वह बलिदान नहीं लेता है। क्या यह भी सम्भव है, कि मैं उसके योग्य नहीं थी ?

२८ मई

मेरी उदासी का यह विश्लेषण कितना भयंकर है ? मैं इस डायरी के प्रति अधिकाधिक आसक्त होती जाती हूं। मैं समझती थी, कि मैंने अपने व्यक्तिगत अहंभाव को जीत लिया है। क्या वह अब अपने अस्तित्व को सिद्ध कर रहा है ? नहीं, ईश्वर न करे कि मेरी आत्मा इस डायरी को अपनी साज-सज्जा के लिए एक खुशामदी शीशे के तौर पर इस्तेमाल करे। मैं केवल खाली-खाली रहने के कारण ही नहीं लिख रही हूं, जैसा कि शुरू में मेरा विचार था, अपितु अपनी उदासी को दूर करने के लिए भी। उदासी एक पापात्मक अवस्था है, वह अब हमेशा के लिए मेरे मन में बस गई है, मैं उससे कितनी घृणा करती हूं, और इस जटिलता से अपनी आत्मा को मुक्त करना चाहती हूं। इस पुस्तक की सहायता से मुझे अपनी प्रसन्नता एक बार फिर अपने ही अन्दर से ढूंढ़ निकालनी पड़ेगी।

उदासी एक जटिल अवस्था है। मैं कभी अपनी प्रसन्नता का विश्लेषण नहीं किया करती थी।

फांग्युस्मार में मैं अकेली थी, नितान्त अकेली——मैंने तब इसे अनुभव क्यों नहीं किया ? और जब जरोम मुझे इताली से पत्र लिख रहा था, तब मैं इस बात के लिए स्वेच्छा से तैयार थी, कि वह मेरे बिना घूम सके, मेरे

बिना रह सके। मैं विचार द्वारा उसका अनुसरण करती थी, और उसकी प्रसन्नता में ही मैं अपनी प्रसन्नता समझती थी। और अब मन को मैं कितना समझाती हूं, पर मन उसी का साथ चाहता है। उसके बिना, जो भी नई वस्तु मैं देखती हूं, वही कष्टदायक प्रतीत होती है।

१० जून

इस डायरी को लिखने में बड़ा लम्बा विघ्न पड़ गया, यद्यपि मैंने अभी इसको बहुत थोड़ा लिखा था, कारण––छोटी सीलिसा का जन्म, ज्यूलिएत् के पास घण्टों बैठने की आवश्यकता––जो बातें जरोम को लिख सकती हूं, उन्हें यहां लिखने में कोई आनन्द नहीं आता है। अनेक स्त्रियों में जो असह्य दोष बहुधा पाया जाता है––अर्थात् बहुत अधिक लिखना–– मैं अपने को उससे बरी रखना चाहती हूं। इस डायरी को मैं अपनी पूर्णता का साधन समझूंगी।

(इसके पश्चात् कुछ पृष्ठ उसने अपने अध्ययन-नोटों और उद्धरणों आदि से भरे हुए थे, उसके पश्चात् फांग्युस्मार से तारीखें डालकर, एक-बार फिर––)

१६ जुलाई

ज्यूलिएत् प्रसन्न है, ऐसा ही वह लिखती है और ऐसी ही प्रतीत भी होती है। मुझे इसमें सन्देह करने का न कोई कारण है और न अधिकार। अब जब मैं उसके साथ रह रही हूं, तो असन्तोष और बेचैनी का जो यह भाव मेरे मन में रहता है, यह कहां से आता है? शायद इस भावना के कारण कि ऐसी प्रसन्नता भी इतनी सम्भव है, इतनी सुलभ्य है, और इतनी पूर्णता के साथ नपी-तुली है कि आत्मा उसके नीचे कुचल जाती है और इस हद तक कि उसका दम घुट जाता है।.....

और मैं अपने आप से प्रश्न करने लग जाती हूं, कि मैं जिस वस्तु की कामना करती हूं, क्या वह वस्तुतः प्रसन्नता है, अथवा प्रसन्नता की ओर

प्रगति ! हे भगवान्, मुझे उस प्रसन्नता से बचाना, मैं जिसे बहुत सुगमता से प्राप्त कर सकूं । मुझे शिक्षा दो, कि मैं अपनी प्रसन्नता को दूर रख सकूं, मैं उसे अपने से उतनी दूर रख सकूं, जितनी दूर मुझसे तुम हो ।

(यहां कुछ पृष्ठ फाड़ दिये गये थे--निःसन्देह वे लहाव्र में हमारे पीड़ा-दायक मिलन के सम्बन्ध में थे । डायरी फिर आगामी वर्ष तक प्रारम्भ नहीं की गई । पृष्ठों पर तारीख नहीं डाली गई थी, पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि जब मैं फांग्युस्मार में ठहरा हुआ था, उन दिनों उसमें अवश्य लिखा गया था---)

कभी-कभी जब वे बातें कर रहे होते हैं, और मैं सुन रही होती हूं, तो ऐसा प्रतीत होता है, कि मैं अपने विषय में सोच रही हूं । वे मेरे चरित्र की व्याख्या करते हैं और उसे मेरे सामने स्पष्ट कर देते हैं । क्या मैं उनके बिना रह सकती हूं ? जब मैं उनके साथ होती हूं, तभी मैं "मैं" होती हूं....

कभी-कभी मैं सन्देह में पड़ जाती हूं, कि उनके लिये मेरी जो भावनाएं हैं, क्या उसे ही लोग प्रेम कहकर पुकारते हैं---प्रेम का आम तौर पर जो चित्र खींचा जाता है, वह उस चित्र से जो मैं खींचूंगी कितना भिन्न है । मैं अपने प्रेम के विषय में कुछ भी कहना-कहलवाना पसन्द नहीं करूंगी, मैं उनको प्यार करूंगी, पर उस प्रेम का ज्ञान नहीं चाहूंगी । इससे भी अधिक गम्भीर बात यह है, कि वे भी जान पायें कि मैं उन्हें प्यार करती हूं ।

मुझे अब जीवन के उस अंश में कोई आनन्द नहीं आता, जो उनके बिना बिताना है । मेरा सारा परमार्थ-भाव केवल उनको प्रसन्न करने के लिए है, और फिर भी जब मैं उनके साथ होती हूं, तो मुझे अपना परमार्थ-भाव निर्बल पड़ता प्रतीत होता है ।

मुझे पियानो सीखना अच्छा लगा करता था, क्योंकि ऐसा प्रतीत होता था, कि प्रतिदिन मैं उसमें उन्नति करती जाती हूं । और शायद विदेशी

भाषा की पुस्तक पढ़ने में जो आनन्द आता है, उसका भी यही रहस्य है। यह बात तो कदापि नहीं है, कि मुझे अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त और कोई भाषा अच्छी लगती हो या उसके जिन लेखकों की मैं प्रशंसा करती हूं, वे मुझे अन्यदेशीय लेखकों के मुकाबले में हीन प्रतीत होते हों। पर उनके अभिप्राय और भावों को समझने में जो थोड़ी-सी कठिनता का सामना करना पड़ता है, उस कठिनता को विजय करने में अनजाने ही अभिमान का भाव आ जाता है, और उस विषय की अधिकाधिक सफलता के साथ प्राप्ति मेरे बौद्धिक आनन्द में विशेष आत्मिक सन्तोष का भाव जोड़ देती है, और ऐसा प्रतीत होता है कि उसके बिना मेरा काम नहीं चल सकता।

मैं उन्नतिहीन दशा की इच्छा नहीं कर सकती, चाहे वह कितनी ही दैवी क्यों न हो। दैवी आनन्द मेरी दृष्टि में ईश्वर के सामने आत्मा की हार नहीं है, अपितु उसकी ओर शाश्वत अनन्त आकर्षण है....यदि सीधी-सादी भाषा में कहा जाय, तो मैं कहूंगी कि मैं किसी ऐसे आनन्द की कल्पना नहीं कर सकती, जो उन्नतिशील न हो।

आज सुबह हम कुंज में बेंच पर बैठे थे, हम बातें नहीं कर रहे थे, और बातें करने की कोई आवश्यकता भी अनुभव नहीं कर रहे थे......अकस्मात् उन्होंने मुझसे पूछा, कि क्या मैं आगामी जीवन में विश्वास करती हूं।

"अहा ! जरोम !" मैं चिल्लाकर बोली "इस विषय में मुझे केवल सम्भावना ही नहीं, अपितु पूर्ण निश्चय है।" और मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मेरे इस उद्गार में मेरा समग्र विश्वास समा गया था।

वे बोले—"मैं जानना चाहूंगा।" फिर कुछ क्षण रुककर "क्या तुम क्रिया में अपने विश्वास से भिन्न आचरण करोगी ?"

"यह कैसे बता सकती हूं ?" मैंने उत्तर दिया, और फिर बोली—"और तुम मेरे प्यारे, यदि तुम स्वयं चाहो, तो भी तुम्हें अपने सजीव विश्वास से जो प्रेरणा मिलेगी, तुम उससे भिन्न आचरण न कर सकोगे। और यदि ऐसा न हुआ, तो मैं तुम्हें प्यार न कर सकूंगी।"

नहीं, जरोम, नहीं, हमारी पारमार्थिकता किसी भावी पारितोषिक के लिए प्रयत्नशील नहीं है, हमारा प्रेम पारितोषिक नहीं चाहता है। एक महान् आत्मा को अपने प्रयत्नों के लिए पारितोषिक मिलने के विचार से चोट पहुंचती है, और वह परमार्थ-तत्त्व को शोभा की वस्तु नहीं समझती, परमार्थ-तत्त्व स्वयं मूर्तिमान् सौन्दर्य है।

पिताजी फिर अच्छे नहीं हैं। मैं आशा करती हूं, कि कोई चिन्ताजनक बात नहीं है, पर पिछले तीन दिनों से वे केवल दूध पर रहने के लिए विवश हुए हैं।

कल शाम, तभी जरोम अपने कमरे में ऊपर गये थे, पिताजी कुछ देर तक मेरे साथ जागते रहे, और कुछ क्षणों के लिए मुझे अकेली छोड़कर बाहर चले गये। मैं सोफा पर बैठी थी, या जैसा मैं कभी भी नहीं करती हूं——न जाने क्यों, मैं लेट गई। लैम्प के शेड के कारण मेरी आंखों और शरीर के ऊपले भाग पर छाया पड़ रही थी, मेरे पैर मेरी फ्राक के बाहर निकले हुए लैम्प की रोशनी में दिखलाई पड़ रहे थे, मैं मशीन के समान उनकी ओर ताक रही थी। जब पिताजी वापस आये, तो क्षण भर दरवाजे पर रुके, वे कुछ अजीब ढंग से आधी मुस्कान और आधी उदासी के साथ मेरी ओर देख रहे थे। मैं संकोच के एक अजीब-से भाव के साथ उठ खड़ी हुई, तब उन्होंने मुझे पुकारा।

वे बोले–"आओ, मेरे पास बैठो!" यद्यपि तब रात बहुत जा चुकी थी, वे मुझसे मेरी मां के विषय में बातें करने लगे। ऐसा उन्होंने उससे पृथक् होने के बाद कभी नहीं किया था। उन्होंने मुझे बतलाया, कि उन्होंने उससे किस प्रकार विवाह किया था, वे उसे कितना प्यार करते थे, प्रारम्भ में उसकी उनके लिए कितनी अधिक कीमत थी।

आखिरकार मैं उनसे बोली–"पिताजी, यह सब मुझे आप आज–आज की शाम को ही क्यों कह रहे हैं—ऐसी कौन-सी बात है, जो यह सब बातें आज ही कहने के लिए आपको प्रेरणा दे रही है?"

"क्योंकि, अभी, जैसे ही मैं बैठक में घुसा और तुम्हें सोफा पर पड़े देखा, तो क्षण भर के लिए मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे तुम्हारी मां हो।"

मैंने जो यह बात जानने की इतनी हठ की, उसका कारण यह था कि जरोम उसी दिन शाम को मेरे कन्धे पर झुककर खड़े हुए पढ़ रहे थे। मैं उनको देख ही नहीं सकती थी, अपितु उनका श्वास यहां तक कि उनके शरीर की गर्मी और धड़कन तक को अनुभव कर सकती थी। मैंने पढ़ते रहने का बहाना किया, पर मेरे मन ने सोचना बन्द कर दिया था, और मुझे पंक्तियां तक दिखाई नहीं देती थीं। एक अजीब बेचैनी मुझ पर छा गई थी। जब तक मैं बिलकुल ही अवश न हो जाऊं, मैं जल्दी से किसी तरह कुर्सी पर से उठ गई और कुछ देर के लिए कमरे से बाहर चली गई। सौभाग्य से उनका ध्यान किसी बात पर नहीं गया। पर कुछ समय बाद, मैं बैठक में अकेली थी और सोफा पर पड़ी थी, जब कि पिताजी ने समझा कि मैं बिलकुल अपनी मां के समान दिखाई दे रही थी। ठीक उसी वक्त मुझे भी मां का ध्यान आ रहा था।

कल रात मुझे अच्छी नींद बिलकुल नहीं आई, मैं व्याकुल थी, उदास थी, विपद्ग्रस्त थी। भूतकाल की स्मृतियां रह-रहकर मेरे मन में उठ रही थीं, वे पश्चात्ताप की लहर के समान मेरे ऊपर छा गई थीं।

ईश्वर, जिस बात में बुराई का जरा-सा भी अंश है, मुझे उसकी बीभत्सता का ज्ञान कराओ।

बेचारे जरोम, यदि तुम्हें मालूम होता, कि कभी-कभी तुम्हें केवल एक संकेत भर करने की आवश्यकता थी, और कभी-कभी मैं उस संकेत की प्रतीक्षा भी किया करती हूं.......

जब मैं बच्ची थी, तब भी मैं केवल उन्हीं के कारण सुन्दरी होने की कामना करती थी। अब मुझे ऐसा प्रतीत होता है, कि यदि उनके लिए न करना होता, तो मैं पूर्णता प्राप्त करने का प्रयत्न भी कभी न करती। और हे मेरे भगवान्! तुम्हारी सम्पूर्ण शिक्षाओं में जो एक बात मेरी

आत्मा को सबसे अधिक कष्ट पहुंचानेवाली है, वह यह है कि यह पूर्णता केवल उनके बिना ही प्राप्त की जा सकती है। वह आत्मा कितनी प्रसन्न होगी, जिसके लिए प्रेम और परमार्थ एक ही तत्त्व हैं। कभी-कभी मुझे सन्देह होने लगता है, कि क्या प्रेम के अतिरिक्त भी कोई परमार्थ-तत्त्व है.... जितना अधिक से अधिक सम्भव हो, उतना प्यार करना और बराबर अधिकाधिक उसकी मात्रा को बढ़ाते जाना.....पर कई बार, खेद है, कि परमार्थ मुझे प्रलोभन से बचने के अतिरिक्त और कुछ नहीं प्रतीत होता। जो मेरे हृदय की सबसे अधिक स्वाभाविक प्रवृत्ति है, मैं उस परमार्थ का क्या नाम रख सकती हूं ? आह ! लुभावना वितण्डावाद ! महान् प्रलोभन ! प्रसन्नता की शरारत-भरी मृगतृष्णा।

आज सुबह मैंने ला ब्रुयेर में पढ़ा—

"इस जीवन में कभी-कभी बहुत लुभावने विनोदों और बहुत कोमल आशाओं के दर्शन होते हैं, पर क्योंकि वे अभी तक हमारे लिए निषिद्ध हैं, अत: यह स्वाभाविक इच्छा होती है, कि वे हमारे लिए ग्राह्य हो जायं, इतने बड़े संमोहनों से केवल तभी बचा जा सकता है, जब कि परमार्थ हमें उनका त्याग करना सिखाता है।"

मैंने यहां इस बात का आविर्भाव क्यों किया, कि कोई बात निषिद्ध भी है ? क्या यह सम्भव है, कि मैं प्रेम की अपेक्षा किसी बहुत अधिक मिठास और किसी बहुत शक्तिशाली लोभ की ओर चुपके-चुपके आकृष्ट हूं ? आह ! यदि यह सम्भव हो सके कि हमारी दोनों आत्माओं को इकट्ठे ही प्रेम की शक्ति द्वारा, प्रेम से ऊपर आगे ले जाया जा सके।

ओह ! मैं अब बिलकुल अच्छी तरह समझ गई हूं, कि ईश्वर और उनके बीच में मेरे अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है। शायद उनके कथनानुसार मेरे प्रति उनके प्रेम ने ही पहलेपहल ईश्वर की ओर उनको प्रवृत्त किया। अब वही प्रेम उनके लिए बाधक सिद्ध हो रहा है। वे मेरे साथ अटके रहते हैं, मुझे तरजीह देते हैं, और मैं वह प्रतिमा बन गई हूं, जो परमार्थ

की ओर और अधिक उन्नति करने से उनको रोक रहा है। हममें से एक को तो उसे प्राप्त करना ही होगा, और क्योंकि अपने कायर हृदय-वासी प्रेम को जीतने में मैं असमर्थ हूं, अतः हे ईश्वर ! मुझे वह शक्ति प्रदान करने की कृपा करो, जिससे मैं उन्हें यह शिक्षा दे सकूं, कि वे अब मुझे और अधिक प्यार न करें, जिससे कि अपने सद्गुणों की बलि कर मैं तुम तक उनके सद्गुण पहुंचा सकूं, जो इतने असीम तौर पर ऊंचे हैं.....और यदि आज मेरी आत्मा उनको खोकर शोक में सिसक रही है, तो क्या फिर तुममें उनको पाने के लिए ही मैं आज उनको नहीं खो रही हूं ?

मुझे बताओ, हे मेरे भगवान्, कौन-सी आत्मा कभी इससे अधिक तुम्हारी अधिकारिणी थी ? क्या वे मुझे प्यार करने की अपेक्षा किसी उच्चतर उद्देश्य के लिए उत्पन्न नहीं हुए हैं ? और क्या यह उचित है, कि मैं उन्हें इतना अधिक प्यार करूं कि उनका जीवनोद्देश्य अधर में रहकर मुझी तक समाप्त हो जाय ? यह इतना वीरतापूर्ण कार्य प्रसन्नता के बीच में लीन हो जाता है।

रविवार

"ईश्वर ने हमारे लिए कुछ उच्चतर उद्देश्य सिरजे हैं।"

सोमवार ३ मई

जरा विचारो तो कि प्रसन्नता यहां है, पास ही है, वह अपने आपको प्रस्तुत कर रही है, और आपको उसे प्राप्त करने के लिए केवल हाथ बढ़ा कर उसे ले लेना है......

आज सुबह जब मैं उनसे बातें कर रही थी, मैंने अपने बलिदान को पूर्ण कर लिया।

सोमवार, शाम

वे कल जा रहे हैं......

प्यारे जरोम, मैं अनन्त कोमलता के साथ तुम्हें अभी तक प्यार करती

हूं, पर अब कभी भी मैं तुम्हें यह बात कह न सकूंगी। मैं अपनी आंखों पर अपने होंठों पर और अपनी आत्मा पर जो नियन्त्रण रखती हूं, वह इतना कठोर है, कि तुमसे वियुक्त न होने में एक मुक्ति और एक कटु सन्तोष-सा अनुभव होता है।

मैं कार्य-कारण भाव से कार्य करना चाहती हूं, पर कार्य का अवसर आने पर जिन कारणों से मैंने कार्य किया था उन्हें मैं भूल जाती हूं या वे मुझे सारहीन प्रतीत होने लगते हैं, मैं उन पर और अधिक भरोसा नहीं कर सकती........

वे कारण, जो मुझे उनसे दूर भगाते हैं? मैं उन पर और अधिक भरोसा नहीं करती.....और तो भी मैं उनसे भागती हूं। ऐसा करते हुए मुझे बहुत दुःख होता है, पर मैं समझ नहीं पाती कि मैं उनसे क्यों दूर भागती हूं।

हे ईश्वर, हम तुम्हारी ओर बढ़ सकें, मैं और जरोम साथ-साथ, एक दूसरे के अगल-बगल, एक दूसरे की मदद करते हुए, हम जीवन-पथ पर दो तीर्थयात्रियों के समान चल सकें, जो समय-समय पर एक दूसरे से कहते हों—"भाई, अगर तुम थक गये हो, तो मेरा सहारा ले लो" और दूसरा उत्तर देता हो—"तुम मेरे साथ हो, यह अनुभूति ही पर्याप्त है.......;" पर नहीं! हे भगवान्, तुम जिस पथ का अनुसरण करने की शिक्षा देते हो, वह इतना संकरा है, कि दो व्यक्ति उस पर अगल-बगल चल ही नहीं सकते।

४ जुलाई

छः सप्ताह से अधिक बीत गये और मैंने इस पुस्तक को नहीं खोला। पिछले महीने जब मैं इसके कुछ पृष्ठों को दोहरा रही थी, तो मुझे भान हुआ कि मेरे मन में एक बेवकूफी से भरी दुष्टतामयी चिन्ता का उदय हुआ है, वह यह कि मैं अच्छा लिखूं.......यह उनके कारण है.......

ऐसा प्रतीत होता है, कि जिस पुस्तक को मैंने इस उद्देश्य से प्रारम्भ

किया था कि मैं उनके बिना अपनी सहायता स्वयं कर सकूं, उसे जैसे अब मैंने उनको सम्बोधन कर लिखना प्रारम्भ कर दिया हो.....

मैंने उन सब पृष्ठों को फाड़ डाला, जो मुझे अच्छे लिखे हुए प्रतीत होते थे। (मैं जानती हूं, कि यहां पर मेरा क्या अभिप्राय है) मुझे तो वे सब पृष्ठ फाड़ डालने चाहिए थे, जिनका उनसे जरा भी सम्बन्ध है। मुझे उन सबको फाड़ डालना चाहिए था! ......मैं यह नहीं कर सकी।

और क्योंकि मैंने उन कुछ पृष्ठों को फाड़ डाला है, अतः मेरे अन्दर थोड़े से अभिमान का उदय हो आया.......एक ऐसा अभिमान, जिसे मैं हंसकर उड़ा देती, यदि मेरा हृदय इतना दुर्बल न हो गया होता।

वास्तव में मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो मैंने कुछ इनाम लायक काम किया हो, जैसे मैंने कुछ सचमुच महत्त्वपूर्ण चीज नष्ट कर डाली हो।

६ जुलाई

मुझे अपने पुस्तकालय को देशनिकाला दे देना पड़ा है......यदि एक पुस्तक में विद्यमान उनसे मैं दूर भागती हूं, तो दूसरी में उन्हें मौजूद पाती हूं। मैं उन पृष्ठों को भी उन्हीं की वाणी द्वारा पढ़े जाते हुए सुनती हूं, जिन्हें मैं उनके बिना ढूंढ़ निकालती हूं। मुझे वही चीज अच्छी लगती है, जिसमें उनकी रुचि है। मेरा मन उनके साथ इतना तदाकार हो गया है, कि अब मैं एक को दूसरे से बिलकुल भी पृथक् नहीं कर पाती हूं। मेरी ठीक वही अवस्था है, जब कि मुझे यह देखकर आनन्द मिलता था कि हम दोनों के मन एकरस हैं।

कभी-कभी मैं अपने को विवश करती हूं, कि मैं भद्दा लिखूं, ताकि मैं उनकी सुन्दर वाक्यावलियों से बच सकूं, पर उनके विरुद्ध संघर्ष करना भी तो उन्हीं से सम्बन्धित होता है। मैंने निश्चय कर लिया है, कि मैं बाइबल के अतिरिक्त और कुछ नहीं पढ़ूंगी, (और शायद उसके 'इमिटेशन' भी) और इस पुस्तक में अपने अध्ययन के मुख्य मूल पाठ को लिख लेने के अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं लिखूंगी। (यहां से एक प्रकार की डायरी प्रारम्भ हुई,

जिसमें पहली जुलाई से प्रारम्भ कर प्रत्येक दिन की तारीख पर एक मूल पाठ दिया गया था। मैं यहां केवल उन्हीं को उद्धृत कर रहा हूं, जिन पर किसी प्रकार का भाष्य था—)

२० जुलाई

"जो कुछ तेरे पास है, उसे बेच डाल और गरीबों को प्रदान कर दे।"

मैं समझती हूं, कि मुझे अपना यह हृदय जो केवल जरोम का है, गरीबों को दे डालना चाहिए। और ऐसा करके क्या साथ ही मुझे उन्हें भी यही करने की शिक्षा न देनी चाहिए......भगवान् मुझे यह शक्ति और हिम्मत प्रदान करे।

२४ जुलाई

मैंने "आभ्यन्तरिक सान्त्वना" पढ़ना बन्द कर दिया है। पुराने ढंग की भाषा मुझे बहुत सुहाती थी, पर वह ध्यान बंटानेवाली थी और उससे मुझे जो नास्तिक आनन्द मिलता है, वह उस आत्मिक उन्नति से बहुत भिन्न है, जिसे उससे प्राप्त करने के लिए मैं उसे पढ़ने लगी थी।

मैंने फिर 'इमिटेशन' पढ़ना प्रारम्भ कर दिया है, यहां तक कि मूल लैटिन में भी नहीं, यद्यपि उसे भली भांति समझने का मुझे बहुत अभिमान था। मुझे खुशी है, कि जिस अनुवाद को मैं पढ रही हूं, उस पर किसी का नाम नहीं है। यह सच है कि वह प्रोटेस्टेन्ट मत का है, पर उसके मुख्य पेज पर लिखा है, "सम्पूर्ण ईसाई सम्प्रदाय के प्रयोग के लिए स्वीकृत"।

"आह! यदि तू समझदार होता तो तू अपने लिए कितनी शान्ति और दूसरों के लिए कितना आनन्द जुटा पाता, यदि तू अपना ठीक नियन्त्रण करे, तो मुझे लगता है कि तू अपनी आत्मिक उन्नति के लिये अधिक प्रयत्नशील हो सकेगा।"

१० अगस्त

मेरे भगवान्, यदि बच्चे के नैसर्गिक विश्वास और देवदूत की दिव्य वाणी से मैं तुम्हारे सामने रो सकूं......

मैं जानती हूं यह भावना, तुम्हीं से मुझे मिलती है, जरोम से नहीं। फिर क्यों तेरे और मेरे बीच में सर्वत्र तू उनकी मूर्ति स्थापित कर देता है ?

१८ अगस्त

केवल दो महीने रह गये हैं, इस बीच में मुझे अपना कार्य समाप्त कर देना है......हे ईश्वर, मुझे अपनी सहायता दे।

२० अगस्त

मैं अनुभव करती हूं.....मैं अपनी दुःखपूर्ण अवस्था के कारण अनुभव करती हूं कि मेरा बलिदान मेरे हृदय में पूर्णतया बद्धमूल नहीं हुआ है। मेरे भगवान्, भविष्य में मेरे मन की सम्पूर्ण आनन्दी अवस्था तेरे कारण ही हो, जो अब तक उनके कारण होती थी।

२८ अगस्त

जिस परमार्थ को में प्राप्त करती हूं, वह कितना मध्यम और शोकप्रद है। क्या मैं अपने आपको बहुत अधिक संयम में डालती हूं ?.....ताकि अधिक कष्ट न सहूं।

यह कैसी कायरता है, जो मैं हमेशा ईश्वर से शक्ति की भिक्षा मांगती हूं ? मेरी प्रार्थना अब केवल शिकायतों के रूप में ही है।

२९ अगस्त

"खेतों के फूलों का विचार करो......"

इस सरल कथन ने आज सुबह मुझे ऐसी उदासी में डुबो दिया, जिससे कोई भी बात मेरा ध्यान नहीं बंटा सकी। मैं देहात में घूमने गई और इन शब्दों का जप करती रही और मेरे हृदय और आंखों में आंसू उमड़ते रहे। मैंने उस विस्तीर्ण और खाली मैदान पर दृष्टिपात किया, जहां अपने हल पर झुका हुआ किसान काम कर रहा था।....."खेतों के फूल"......पर हे भगवान्, वे कहां हैं........?

१६ सितम्बर, दस बजे रात

मैं उनसे फिर मिली हूं। वे यहां इसी मकान में हैं। उनकी खिड़की से घास पर पड़ती हुई रोशनी मुझे दिखाई दे रही है। वे अभी तक जगे हैं, जब कि मैं इन पंक्तियों को लिख रही हूं। और शायद वे भी मेरे ही विषय में सोच रहे हैं। उनमें परिवर्तन नहीं आया है। वे यह बात कहते हैं, और मैं भी ऐसा ही अनुभव करती हूं। क्या मैं अपने को उन पर उस रूप में प्रकट कर सकूंगी, जैसा कि मैंने निश्चय किया है, जिससे उनका प्रेम मुझ पर और अधिक न रहे ?

२४ सितम्बर

आह ! वह बातचीत कितनी यातनापूर्ण थी, जिसमें मैं उदासीनता और ठण्डक का नाट्य कर रही थी और तब मेरा हृदय अन्दर ही अन्दर घुटा जा रहा था। अब तक मैंने उनसे बचकर अपना सन्तोष किया है। आज सुबह मैं यह विश्वास कर सकी थी, कि ईश्वर मुझे विजयी होने की शक्ति देगा, और उस संघर्ष को हमेशा के लिए समाप्त कर देगा, जिसमें मेरे कायर सिद्ध होने का भय हो। क्या मेरी विजय हुई ? क्या जरोम अब मुझे कुछ कम प्यार करते हैं ? खेद है, मुझे इस बात की आशा और भय साथ ही बने रहते हैं। मैंने स्वयं तो उन्हें इससे अधिक प्यार कभी नहीं किया ।

और, हे भगवान्, यदि यही तेरी इच्छा है, कि अपने से उनकी रक्षा करने के लिए मुझे अपना विनाश स्वयं कर लेना चाहिए, तो ऐसा ही हो ।

"तू मेरे हृदय और मेरी आत्मा में प्रवेश कर, जिससे उनमें विद्यमान मेरे कष्टों को तू धारण कर सके, और तेरे सम्मुख मेरे मैं का जो कुछ अंश बच गया है, या जो इच्छाएं शेष रह गई हैं, उन्हें सहन करता रहे।" ।

हमने पास्कल का जिक्र किया....मैंने क्या कहा था ? कैसे निर्लज्ज

तथा मूर्खतापूर्ण शब्द थे वे ? मुझे उनको कहते हुए भी कष्ट हो रहा था, पर आज रात तो मुझे उन पर ऐसा पछतावा है, जैसे कि मैंने कुवाक्य कह दिये हों। मैं फिर 'पांसे' (विचार) की भारी जिल्द उलटने-पटलने लगी, वह स्वयं ही कुमारी द रोने के पत्रों के इस प्रकरण पर खुल गई—

"हम अपने बन्धनों को तब तक अनुभव नहीं करते, जब तक हम स्वेच्छा से उसका अनुसरण करते रहते हैं जिसके हम पीछे चलते हैं, पर ज्यों ही हम उसका मुकाबला करना और उससे दूर हटना शुरू कर देते हैं, तब हम सचमुच कष्ट उठाते हैं ।"

इस शब्दों ने वैयक्तिक तौर पर मुझ पर इतना असर डाला कि मुझमें आगे पढ़ते जाने की शक्ति नहीं रही । पर एक और स्थान पर पुस्तक खोलने पर मुझे एक प्रशंसा योग्य उद्धरण मिला, जिसका मुझे ज्ञान न था और मैंने अभी जिसकी प्रतिलिपि की है ।

डायरी का पहला भाग यहां पर समाप्त हो जाता है । निःसन्देह दूसरा भाग नष्ट कर दिया गया है, क्योंकि जो कागज अलीसा ने छोड़े हैं, उनमें डायरी फिर तीन वर्ष तक आरम्भ नहीं हुई है । तब फिर वह फांग्यु-स्मार में—सितम्बर में—अर्थात् हमारे अन्तिम मिलन से थोड़ा पहले शुरू होती है ।

अन्तिम भाग निम्नलिखित वाक्य से प्रारम्भ होता है ।

१७ सितम्बर

मेरे भगवान्, तू जानता है कि तुझे प्यार करने के लिए मुझे उनकी आवश्यकता है ।

२० सितम्बर

मेरे भगवान्, मुझे उनको दे दो, जिससे मैं तुझे अपना हृदय दे सकूं ।

मेरे भगवान्, मुझे उनके केवल एक बार और दर्शन करा दो ।

मेरे भगवान्, मैं तुझे अपना हृदय देने के लिए वचनबद्ध हूं। मेरा प्यार जो मांगता है, वह मुझे दे। अपने जीवन का जो कुछ शेष है, उसे केवल तुझी को अपर्ण करूंगी।

मेरे भगवान्, मेरी इस गह्र्य प्रार्थना को क्षमा करना, पर मैं उनका नाम अपने होंठों मे पृथक् नहीं कर सकती और न अपने हृदय की यातना ही भूल सकती हूं।

मेरे भगवान्, मैं तेरे सामने रोती हूं। मुझे मेरी मुसीबत के दिनों म भुलाना मत।

२१ सितम्बर

"पिता से जो कुछ तुम मेरे नाम पर मांगोगे......"

हे भगवान्, मैं तेरे नाम पर साहस नहीं करती।

पर यद्यपि मैं अब और अधिक प्रार्थना नहीं करती हूं, क्या तुझे मेरे हृदय की सन्निपात की अवस्था तक पहुंची हुई इच्छाओं का कम ज्ञान होगा ?

२७ सितम्बर

प्रातःकाल से ही महान शान्ति है। प्रायः समग्र रात्रि ध्यान में, प्रार्थना में बिताई है। अकस्मात् मुझे एक प्रकार की प्रकाशमान शान्ति का अनुभव हुआ, ठीक वैसी ही शान्ति, जैसी कि बचपन में मैं पवित्र आत्मा (सां एस्प्री या होली घोस्ट) के सम्बन्ध में कल्पना किया करती थी। ऐसा प्रतीत होता था, कि वह मुझ पर चारों ओर से छा गई और मेरे अन्दर व्याप्त हो गई। मैं तुरन्त सोने चली गई, मुझे भय था कि मेरा आनन्द केवल अत्यधिक स्नायविक उत्तेजना के कारण ही तो नहीं है। मैं उस अत्यधिक आनन्दी अवस्था के नष्ट हुए बिना ही बहुत जल्दी सो गई। वह आज प्रातः भी अपनी सम्पूर्ण पूर्णता के साथ विद्यमान है। अब मुझे निश्चय हो गया है, कि वे आवेंगे।

३० सितम्बर

जरोम, मेरे दोस्त ! तुम्हें मैं अभी तक भाई कहकर पुकारती हूं, पर तुम्हें मै भाई की अपेक्षा अनन्त अधिक प्यार करती हूं......कितनी बार बीच कुंज में मैने तुम्हारा नाम लेकर पुकारा है। प्रतिदिन शाम को झट-पुटा होने पर तरकारी के बगीचे के छोटे-से द्वार से मैं बाहर निकल जाती हूं और सड़क तक घूमती चली जाती हूं, वहां पहले ही अंधेरा हो चुका होता है। यदि अकस्मात् तुम मेरे जवाब में बोल पड़ो, यदि तुम पत्थर की उस पुलिया के पीछे से निकल पड़ो, जिसके चारों ओर मैं तुम्हें इतनी उत्सुकता से खोजती हूं, या यदि तुम दूर बेंच पर बैठे हुए मेरी प्रतीक्षा करते हुए मुझे दिखाई दो तो मेरा हृदय उछल नहीं पड़ेगा......नहीं। तुम्हें न देखकर मुझे आश्चर्य है।

१ अक्टूबर

अभी तक कुछ नहीं। अतुलनीय नीलाकाश में सूर्य छिप गया है। मैं प्रतीक्षा कर रही हूं, मै जानती हूं कि शीघ्र ही मैं उनके साथ इस बेंच पर बैठूंगी। मुझे अभी से उनका स्वर सुनाई दे रहा है। जब वे मेरा नाम लेते हैं, तो मुझे कितना अच्छा लगता है। वे यहां आवेंगे। मैं अपना हाथ उनके हाथ पर रख दूंगी। मैं अपना सिर उनके कन्धे पर टिका दूंगी। मैं उनके साथ सांस लूंगी। कल मैं उनकी कुछ चिट्ठियां दुबारा पढ़ने के लिए अपने साथ लाई थी, पर मैंने उनकी ओर देखा भी नहीं—मैं उन्हीं के विचार में बहुत अधिक डूबी रही। मैं अपने साथ एमेथिस्ट क्रास भी लाई थी, जो उन्हें इतना पसन्द था, और जिसे मैं गर्मियों में प्रतिदिन शाम को तब तक पहने रखती थी, जब तक मैं उन्हें जाने नहीं देना चाहती थी। मैं यह क्रास उन्हें दे देना चाहूंगी। पिछले काफी दिनों से मुझे एक स्वप्न आता रहा है—अर्थात् उन्होंने विवाह कर लिया है और मैं उनकी पहली बेटी की देवमाता हूं। उस मुन्नी का नाम भी अलीसा रक्खा गया है,

मैंने यह गहना उसे दे दिया........मैंने यह उन्हें बताने की हिम्मत क्यों नहीं की ?

२ अक्टूबर

आज मेरी आत्मा उस चिड़िया के समान हल्की और प्रसन्न है, जिसने अपना घोंसला आसमान पर बना लिया हो। क्योंकि आज वे आवेंगे। मैं यह अनुभव करती हूं। मैं यह जानती हूं। मै तमाम दुनिया को यह चिल्ला-चिल्लाकर बता देना चाहती हूं। मैं अनुभव करती हूं, कि यहां मुझे यह बात लिख देनी चाहिए। मै अब और अधिक अपना आनन्द छिपा नहीं सकती। यहां तक कि राबेअर का भी उस पर ध्यान गया, जो साधारणतया मुझसे सम्बन्धित बातों में इतना उदासीन और दूर-दूर रहता है। उसके प्रश्नों से मुझे संकोच हुआ और समझ नहीं पड़ा कि उनका क्या उत्तर दूं ? मैं आज शाम तक कैसे इन्तजार कर सकूंगी ?....

मेरी आंखों पर एक प्रकार की विलक्षण पारदर्शिनी पट्टी मुझे हर तरफ उन्हीं की मूर्ति के दर्शन कराती प्रतीत होती है—उनकी शानदार मूर्ति—और प्रेम की तमाम किरणें मेरे हृदय में केवल एक प्रकाशमान स्थान पर केन्द्रित हैं।

ओह ! यह प्रतीक्षा मुझे कितना थका देती है।

हे भगवान्, केवल एक क्षण के लिए मेरे लिए आनन्द के विशाल द्वार को उन्मुक्त कर दो।

३ अक्टूबर

सब समाप्त हो गया। खेद है ! वे एक छाया के समान मेरी बांहों में से निकल गये। वे यहां थे ! वे यहां थे ! मैं अभी तक उनकी उपस्थिति को अनुभव करती हूं। मैं उन्हें पुकारती हूं। मेरी बांहें, मेरे होंठ रात्रि में व्यर्थ ही उन्हें खोजने लग जाते हैं......न मैं प्रार्थना कर सकती हूं, न सो सकती हूं। मैं फिर अन्धकारमय बगीचे में बाहर निकल आई। मुझे भय

लगता था। अपने कमरे में, घर में, सब जगह मुझे भय लगता था। मेरी मनोवेदना मुझे एक बार फिर उस दरवाजे तक ले आई, जिसके बाहर मैंने उन्हें छोड़ा था। मैंने पागलपन की आशा के साथ उसे खोल डाला, शायद वह वापस आये हों। मैंने पुकारा। मैंने अन्धकार में टटोला। मैं उनको पत्र लिखने के लिए फिर अन्दर आ गई। मैं अपनी व्यथा को सहन नहीं कर सकती।

क्या हुआ था? मैंने उनको क्या कहा था? मैंने क्या किया था? मैं क्यों हमेशा अपने परमार्थ-भाव को उनके सामने अतिशयता के साथ प्रकट करना चाहती हूं। उस परमार्थ का क्या मूल्य है, जिसको मेरा समग्र हृदय अस्वीकार करता है? मैं मन ही मन उन शब्दों के प्रति झूठी पड़ गई, जिन्हें मेरी अन्तरात्मा मेरे होंठों तक ले आई थी। ऐसा करते हुए मेरा हृदय फटा जा रहा था, पर मैं प्रकट तौर पर कुछ भी नहीं कह सकी। जरोम, जरोम, मेरे दुःखी मित्र, जिनकी उपस्थिति से मेरे हृदय से रुधिर बहता है, और जिनकी अनुपस्थिति में मैं छिन्न-भिन्न हो जाती हूं, जो कुछ अभी मैंने तुम्हें कहा है, उस पर विश्वास न करना, अपितु, मेरे प्रेम द्वारा कथित शब्दों पर......

मैंने अपने पत्र को फाड़ डाला, और फिर लिखा......यह उषाकाल हो गया, कितना धूमिल, आंसुओं से भींगा, और मेरे विचारों के समान उदास। मुझे फार्म की प्रातःकालीन ध्वनियां सुनाई दे रही हैं, और सब ओर निद्रित प्राणियों में पुनर्जागरण के चिन्ह प्रकट हो रहे हैं।........अब उठो। समय पास है........

मेरा पत्र नहीं जायगा।

५ अक्टूबर

आह, ईर्ष्यालु भगवान्, तुम्हीं ने मुझे कंगला बनाया है, अब तुम्हीं मेरे हृदय के स्वामी बनो। अब इस हृदय में कोई उष्णता नहीं रह गई है,

और न भविष्य में ही कभी होगी। ममत्व का जो शोकपूर्ण अवशेष मुझ में रह गया है, मेरी सहायता करो, कि मैं उस पर विजय प्राप्त कर सकूं। यह घर, यह बगीचा—सब असह्य तौर पर मेरे प्रेम को उत्तेजित करते हैं। मुझे किसी ऐसे स्थान पर भाग जाना चाहिए, जहां तेरे अतिरिक्त मुझे कोई और न दिखाई दे।

तू मेरी सहायता कर कि मेरे पास जो कुछ भी सम्पत्ति थी वह मैं तेरे दीन-दुखियों को दे सकूं। फांग्युस्मार को मैं आसानी से नहीं बेच सकती, उसे मुझे राबेअर को दे देना चाहिए। यह सच है, कि मैंने अपनी वसीयत कर दी है, पर आवश्यक कानूनी कार्रवाई से मैं अनभिज्ञ हूं। कल मैं वकील से भले प्रकार बात भी नहीं कर पाई, क्योंकि मुझे भय था कि वह मेरे निश्चय के विषय में कुछ सन्देह न कर बैठे और ज्यूलिएत् और राबेअर को सावधान न कर दे। मैं यह कार्य पेरिस में पूर्ण करूंगी।

१० अक्टूबर

यहां पहुंचते-पहुंचते मैं इतनी थक गई थी कि पहले दो दिन बिस्तर पर लेटे रहने के लिए विवश हुई। जो डाक्टर मेरी इच्छा के विरुद्ध बुलाया गया था, वह आपरेशन की बात कहता है और उसे अनिवार्य समझता है। विरोध करने से क्या लाभ ? पर मैं आसानी से उसे यह विश्वास दिलाने में समर्थ हुई कि मैं आपरेशन के विचार से भयभीत हूं, और तब तक प्रतीक्षा करना चाहती हूं, जब तक कुछ शक्ति संचित न कर लूं। मैं अपना नाम और पता छिपाने में समर्थ हुई। मैंने इस संस्था के प्रबन्धकों के पास इतना काफी रुपया जमा कर दिया है, जिससे उन्हें मुझे प्रविष्ट करने में कोई दिक्कत न हो; और जितने दिन भगवान् जरूरी समझे, वे मुझे रख सकें।

मुझे अपना कमरा पसन्द है। उसकी दीवारें पूर्णतया साफ हैं, और उन्हें किसी अन्य सजावट की आवश्यकता नहीं है। मुझे यह देखकर अत्यधिक

आश्चर्य हुआ, कि मैं अब कितना प्रसन्न अनुभव करती हूं। कारण यह है कि मुझे जीवन में अब किसी बात की आशा नहीं रही है—अब मुझे भगवान् में लीन होने में ही सन्तोष है, और उसका प्यार तभी मधुर होता है जब कि हमारे अन्दर के सब रिक्त स्थान, सब शून्य उससे पूर्ण हो जावें।.......

मैं केवल एक पुस्तक अपने साथ लाई हूं, और वह है बाइबल, पर आज उसके जितने भी शब्द मेरी आंखों के सामने से गुजरे, उनमें पास्कल की यह जोश भरी सिसकी सबसे अधिक प्रतिध्वनित हुई—

"जो कुछ भी भगवान् नहीं है, वह मेरी इच्छा पूर्ण नहीं कर सकता।"

आह! मेरा मूर्ख हृदय जिस मानवीय आनन्द की कामना करता था......., क्या यही रुदन मेरे हृदय से निकालने के लिए, हे भगवान्, तूने मुझे इस प्रकार व्यथित किया था?

१२ अक्टूबर

तेरा राज्य उतर आये——वह मेरे अन्दर उतर आये, जिससे तू ही मुझ पर राज कर सके—समग्र मुझ पर राज कर सके। अब तुझे अपना हृदय अर्पण करने में मुझे कोई शिकायत नहीं होगी।

यद्यपि मैं इतनी क्लान्त हो गई हूं, मानो बहुत बूढ़ी हो गई हूं, पर मेरी अन्तरात्मा में विलक्षण बचपन है। मैं अभी तक वही छोटी-सी लड़की हूं, जो अपने कमरे में हरेक चीज को तरतीबवार रक्खे बिना और अपने उतारे हुए कपड़ों को बिस्तर के पास ठीक से तह किये बिना सो नहीं सकती थी.....और उसी प्रकार मैं मृत्यु के लिये भी तैयार होना चाहूंगी।

१३ अक्टूबर

अपनी डायरी को फाड़ डालने से पहले मैंने दुबारा पढ़ डाला। "महान् हृदयों के लिए अपने चारों ओर अपनी अनुभूत व्याकुलताओं का विस्तार करना अनुचित है।" मेरा विचार है, यह इतना सुन्दर वाक्य क्लोतिल्द द ब्रो का है।

जैसे ही मैं इस डायरी को आग में फेंकनेवाली थी, मुझे एक प्रकार की चेतावनी अनुभव हुई, जिसने मुझे रोक लिया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, कि अब यह मेरी नहीं रही और जरोम को इससे वंचित करने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। मैं इसे कभी न लिखती, यदि मुझे उसके लिए न लिखना होता। मेरी चिन्ताएं, मेरे सन्देह अब मुझे इतने मूर्खतापूर्ण प्रतीत होते हैं, कि अब मैं उनको कोई महत्त्व नहीं देती। या मुझे यह विश्वास भी नहीं होता कि वे जरोम की शान्ति में बाधा डालेंगे।

हे भगवान्, ऐसा कर, कि कभी-कभी वह इन पंक्तियों में एक हृदय की भोली-भाली झंकार सुन सके, जिसकी अत्यधिक अभिलाषा थी कि वह उसे परमार्थ की उन ऊँचाइयों पर पहुंचने के लिए प्रेरित कर सके, जहां तक मैं स्वयं पहुंच सकने से निराश हो गई थी। "मेरे भगवान्, मुझे उस पर्वत की चोटी तक पहुंचा दे, जो मुझसे ऊंची है।"

१५ अक्टूबर

"आनन्द, आनन्द, आनन्द, आनन्द के आंसू......."

मानुषिक आनन्द के ऊपर और सब कष्टों से विरहित, जी हां, मैं उस ज्योतिर्मय आनन्द को देख रही हूं। मैं जानती हूं "मुझसे ऊंची पर्वत की चोटी" का नाम ही प्रसन्नता है.......मैं समझती हूं, मेरा सम्पूर्ण जीवन व्यर्थ बीता है, यदि उसमें कोई सार्थकता है, तो वह यह कि उसका अन्त प्रसन्नता में हो रहा है.....आह! भगवान्, पवित्र और पश्चात्तापपूर्ण आत्मा के लिए तेरी प्रतिज्ञा यह थी "अब आगे से धन्य" तेरे पवित्र शब्द ने कहा "वे लोग धन्य हैं जो ब्रह्म में लीन होकर मृत्यु को प्राप्त करते हैं।, क्या मुझे तब तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, जब तक मैं मरती हूं ? इस जगह पर मेरा विश्वास कम्पित हो जाता है। भगवान्! मैं सम्पूर्ण शक्ति से तेरे सामने रोती हूं। मैं रात्रि से घिरी हुई हूं, मैं सुबह की प्रतीक्षा कर रही हूं, मैं उस रुदन से तेरे सामने रोती हूं, जो मुझे क्षीण करके मेरी मृत्यु ले आयेगा। आओ,

मेरे हृदय की प्यास बुझाओ। अभी एकदम मुझे प्रसन्नता की प्यास है.....या मुझे अपने को यह समझाना चाहिए, कि मैंने उसे पा लिया है और जैसे दिन निकलने से पहले अधीर पक्षी की कूक प्रकाश की सन्देशवाहिका न होकर उसको पुकारती है, क्या उसी प्रकार रात्रि के अवसान की प्रतीक्षा किये बिना मुझे भी गान प्रारम्भ कर देना चाहिए ?

१६ अक्टूबर

जरोम, मैं चाहती हूं, कि मैं तुम्हें पूर्ण आनन्द की शिक्षा दे सकती।

आज प्रातःकाल बीमारी के एक दौरे ने मुझे छिन्न-भिन्न कर दिया, और तत्पश्चात् मुझे इतनी निर्बलता अनुभव हुई, कि क्षण भर के लिए मुझे आशा हुई कि मैं मर रही हूं। पर नहीं, पहलेपहल एक महान् शान्ति मेरी सम्पूर्ण-आत्मा में व्याप्त हो गई, फिर यातना की एक धारा ने मुझे छेद दिया, मेरा समग्र शरीर और आत्मा कम्पायमान् हो गई। यह सब मेरे जीवन के एक आकस्मिक और मोहिनी से रहित प्रकाश के समान था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैंने अपने कमरे की दीवारों को उनके भयंकर नग्न रूप में देखा। मैं भय से जकड़ गई। अभी भी मैं अपने को भरोसा देने के लिए और अपने को शान्त करने के लिए लिख रही हूं। हे भगवान् ! मैं बिना किसी पतन के अन्त को प्राप्त हो जाऊं।

मैं उठ सकने में फिर समर्थ हुई। मैं बच्चे के समान अपने घुटनों के बल झुक गई.....

मैं शीघ्र ही, यह अनुभव करने से पहले ही कि मैं अकेली हूं, अब मृत्यु को आलिंगन कर लेना चाहूंगी।

× × × ×

मैं पिछले वर्ष फिर ज्यूलिएत् से मिला। उसका वह अन्तिम पत्र मिले दस वर्ष से ऊपर हो गया था, जिसमें उसने मुझे अलीसा की मृत्यु का समाचार दिया था। देहात की एक यात्रा में मुझे नीम में ठहरने का मौका मिला। अवेन्यु द फ्युशेर में तिसिए का शानदार मकान है, यह सड़क शहर के बीच में खूब हल्ले-गुल्ले में स्थित है। यद्यपि मैंने अपने आने के विषय में लिख दिया था, फिर भी जब मैंने देहली के अन्दर पैर रखा, तो मेरा हृदय नाना भावों से पूर्ण था।

एक नौकरानी आकर मुझे बैठक में बिठा गई और कुछ मिनटों बाद ज्यूलिएत् मेरे पास आई। ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे मैं मौसी प्लातिए से मिल रहा था—वही चाल, वही मोटापन और वही एक सांस में स्वागत। उसने मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना तत्काल मेरे ऊपर प्रश्नों की झड़ी लगा दी—मेरा शगल क्या था, पेरिस में रहन-सहन का क्या तरीका था, मेरे मनोरंजन का क्या साधन था और मेरे परिचित कौन-कौन थे, दक्खिन में मुझे क्या काम था ? मैं ऐग्यु-वीव् क्यों न चला जाऊं ? वहां एदुआर मुझसे मिलकर कितने प्रसन्न होंगे ?.....फिर वह अपने सब परिवार का समाचार देने लगी—अपने पति का, अपने बच्चों का, अपने भाई का, आखिरी अंगूर की फसल का और पतझड़ की मौसम में कीमतों का.....। मुझे मालूम हुआ कि राबेअर ने ऐग्यु-वीव् में रहने के लिए फांग्युस्मार को बेच डाला था और अब वह एदुआर का साझी बन गया था। इससे अब एदुआर निश्चिन्त होकर दौरे पर जा सकता था और व्यापार के बिक्री-सम्बन्धी मामलों की विशेष तौर पर देखभाल कर सकता था, क्योंकि राबेअर खेती की वृद्धि की देखभाल करता हुआ उसी स्थान पर रहता था।

इस बीच में मैं बेचैनी से किसी भूतकाल की याद दिलानेवाली चीज

को चारों ओर ढूंढ रहा था। यों तो बैठक का सब फर्नीचर नया था, पर उसमें कई चीजें मुझे ऐसी दिखलाई पड़ी जो फांग्युस्मार से आई थीं। पर जिस भूतकाल का स्पन्दन मेरे अन्दर हो रहा था, ऐसा प्रतीत होता है कि या तो ज्यूलिएत् का उस ओर ध्यान ही न था, अथवा वह हम दोनों के विचारों को उस ओर से हटाने का प्रयत्न कर रही थी।

बारह और तेरह वर्ष के दो लड़के सीढ़ियों पर खेल रहे थे, उसने उनको मुझसे परिचित कराने के लिए अन्दर बुलाया। उसकी सबसे बड़ी बच्ची लीज् अपने बाप के साथ ऐग्यु-वीव् गई हुई थी। दस वर्ष का एक और लड़का घूमने से अभी वापस आनेवाला था। यह वही लड़का था, जिसकी प्रसूति के विषय में ज्यूलिएत् ने मुझे उस पत्र में लिखा था, जिसमें उसने अलीसा की मृत्यु की बात लिखी थी। इस आखिरी प्रसव में कुछ कष्ट हुआ था, जिसके परिणामस्वरूप ज्यूलिएत् बहुत दिनों बीमार रही थी। फिर पिछले साल, मानो अपने पहले कष्ट का प्रतिशोध करने के लिये उसने एक लड़की को जन्म दिया था; और उसके विषय में जब वह बात करती थी तो ऐसा लगता था कि वह उसे अपने सब बच्चों से अधिक प्यार करती है।

वह बोली—"जहा मेरे कमरे में वह सो रही है, वह पास ही है, आओ, उसे देखने चलो" और जब मैं उसके पीछे-पीछे जा रहा था, "जरोम, मुझे तुम्हे लिखने की हिम्मत नहीं हुई—क्या तुम इस बच्ची के देवपिता होना स्वीकार करोगे ?"

"हां, खुशी के साथ, यदि तुम चाहोगी," मैंने कुछ आश्चर्य के साथ, पालने की ओर झुकते हुए उत्तर दिया "मेरी देवपुत्री का क्या नाम है ?"

ज्यूलिएत् ने बड़ी धीमी आवाज में कहा "अलीसा.....। यह कुछ-कुछ उसी के समान है, क्या तुम ऐसा नहीं समझते ?"

मैंने उत्तर नहीं दिया और ज्यूलिएत् का हाथ जरा-सा दबा दिया। छोटी-सी अलीसा ने मां के गोद में उठाने पर आंखें खोल दी, मैंने उसे अपनी गोद में ले लिया।

"तुम कितने अच्छे पिता बनोगे !" ज्यूलिएत् ने हंसने की कोशिश करते हुए कहा । "तुम शादी करने के लिए किस बात की प्रतीक्षा में हो ?"

"बहुत-सी बातें भूलने की", मैंने उत्तर दिया और लाज की लाल आभा को उसके मुख पर दौड़ते देखा ।

"क्या तुम्हें उन्हें शीघ्र ही भूल जाने की आशा है ?"

"उन्हें मुझे कभी भी भूलने की आशा नहीं है ।"

"इधर आओ" अकस्मात् वह मुझे एक छोटे-से कमरे की ओर ले जाती हुई बोली। यह कमरा प्रायः अंधेरा था, और उसका एक दरवाजा उसके सोने के कमरे में और दूसरा बैठक में खुलता था । "जब में क्षण भर के लिए अकेली होती हूं, तब मैं यहीं शरण लेती हूँ। घर भर में यह कमरा सबसे शान्त है, मुझे यहां ऐसा अनुभव होता है, जैसे मुझे जीवन के संघर्ष से मुक्ति मिल गई हो ।"

इस छोटी-सी बैठक की खिड़कियां अन्य कमरों के समान, शहर के हल्ले-गुल्ले की ओर न खुलकर वृक्षों से भरे हुए एक छोटे-से अहाते की ओर खुलती थीं ।

एक आराम-कुर्सी पर पड़ती हुई वह बोली—"आओ, बैठ जायं, यदि मैं तुम्हें ठीक-ठीक समझ सकी हूं, तो तुम अलीसा की स्मृति के प्रति विश्वस्त रहना चाहते हो ।"

मैंने क्षणभर कुछ उत्तर नहीं दिया ।

"या मेरा जो आदर्श उसके मन में था उस आदर्श के प्रति; नहीं, इसके लिए तुम मुझे कोई वाहवाही न दो । मेरा विचार है कि में इससे भिन्न आचरण कर ही नहीं सकता था । यदि मैं किसी दूसरी स्त्री से विवाह कर लेता, तो उसे प्यार करने का मैं केवल झूठा नाट्य ही कर सकता था ।"

"आह !" वह मानो उदासीनता के साथ बोली; फिर अपना मुंह मेरी ओर से फेरकर वह जमीन की ओर झुक गई, जैसे वह किसी खोई हुई

चीज को ढूढ़ रही हो। "तब तुम समझते हो कि कोई निराश प्रेम को भी हृदय में इतनी देर प्रज्वलित रख सकता है ?"

"हां, ज्यूलिएत् ।"

"और जीवन उसे बुझाये बिना, प्रतिदिन उस पर श्वास फेंकता रहेगा ?'

सन्ध्या काली लहरों के समान धीरे-धीरे उतरती आई; हरेक वस्तु के पास पहुंचकर उसे वह डुबाती गई। अन्धकार में वे वस्तुए फिर सजीव होती हुई और अपने भूतकाल की कहानी कहती हुई प्रतीत हुई। एक बार फिर मुझे अलीसा का कमरा दिखाई दिया, उसका सब फर्नीचर ज्यूलिएत् ने वहा इकट्ठा कर दिया था। और फिर उसने अपना मुह मेरी ओर फेरा, पर अब इतना अन्धकार हो चुका था कि मुझे उसके नयन नक्स स्पष्ट नहीं दिखाई देते थे। इसीलिए मैं नही कह सकता था कि उसकी आंखें खुली हैं या नही। वह मुझे अत्यन्त सुन्दर दिखाई दी, और अब हम दोनों बिना बोले-चाले बैठे रहे।

"आओ" आखिरकार वह बोली, "हमें जग जाना चाहिए ।"

मैंने उसे उठते, एक कदम आगे बढ़ते, और फिर सबसे पास की कुर्सी पर इस प्रकार गिरते देखा, जैसे उसमें कोई शक्ति ही न रह गई थी। उसने अपने दोनों हाथ अपने मुंह पर रख लिये और मेरा ख़्याल है, कि वह रो रही थी।

इसी समय एक नौकर लैम्प लेकर अन्दर आ गया।